Chapter - 1

===

अध्याय : एक विषय-प्रवेश

===

:: अध्याय : एक ::

:: विषय-प्रवेश ::

साहित्य में मानवीय भावनाओं का प्रतिफलन होता है । भावनाओं की निर्मिति युगबोध , परिवेश तथा वैश्विक-वैचारिक प्रवाहों पर अवलंबित है । अतः साहित्य को समाज का मुख एवं मस्तिष्क कहा गया है । जिस प्रकार मुख शारीरिक पीड़ाओं को अभिव्यक्त करता है , उसी प्रकार साहित्य समाज में परिव्याप्त अच्छाइयों और बुराइयों को अभिव्यक्त करता है ।

समाज की विषमताएं , विडम्बनाएं , विद्रूपताएं तथा विकृतियां आदि भी साहित्य में प्रतिबिम्बित होती हैं । परन्तु जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है , साहित्य समाज का केवल मुख ही नहीं है ; अपितु वह समाज का मस्तिष्क भी है । अतः साहित्य समाज के लिए दिशा निर्देश का कार्य भी करता है ।

ऊपर निर्दिष्ट दोनों बातों का प्रतिफलन उपन्यास में सहज ही होता है , क्योंकि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विधा है । इसका अर्थ यह नहीं कि साहित्य की दूसरी विधाओं को यथार्थ से कोई सरोकार नहीं है । कोई

भी कलात्मक विधा यथार्थ को छेक तो नहीं सकती । प्रश्न यहां केवल परिमाण का होता है । हम जिस सामाजिक , सांस्कृतिक परिवेश में जीते हैं , उससे पर होकर उपन्यास की रचना असंभव है । यहां एलिज़ाबेथ ड्रू का यह कथन चिन्तव्य होगा -- " लाईफ , आफ कोर्स इज़ द बेजिक रो मटिरियल आफ ओल आर्ट , बट नो आर्टिस्ट इज़ सो क्लोज टू हिज रो मटिरियल एज़ द नोवेलिस्ट. "[1] तात्पर्य कि अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास यथार्थ से अधिक नजदीक है । राल्फ फोक्स ने भी उपन्यास को यथार्थ की विधा मानी है ।[2]

योरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् सामाजिक ढांचे में अभूतपूर्व परिवर्तन आया । समाज में अनेक जटिलताओं ने प्रवेश किया । तब उन जटिलताओं के समीचीन आकलन के लिए उपन्यास [नोवेल] जैसी विधा अस्तित्व में आई । इसमें एक नया वर्ग -- मध्यवर्ग -- उभरकर आया है । राल्फ फोक्स ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा है -- " मध्यवर्ग का जहां-जहां भी वश चला उसने समस्त सामंतवादी पितृसत्ताक तथा नैसर्गिक संबंध को समाप्त कर दिया । उसने बड़ी निर्ममता से उन छोटे-से-छोटे सामंती-संबंधों को भी टूक-टूक कर दिया जो मानव और देवताओं के बीच थे । उसने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मात्र स्वार्थ तथा "पैसा ही भगवान " सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य कोई भी संबंध नहीं छोड़ा । .... इसने मनुष्य की प्रतिष्ठा को द्रव्य-मूल्य में बदल दिया है और उसकी विभिन्न क्षेत्रों में काम करने की स्वतंत्रता के स्थान पर केवल "उन्मुक्त व्यापार" की निरंकुश स्वतंत्रता को स्थापित कर दिया है । संक्षेप में इसने धर्म और राजनैतिक भुलावों के नाम पर किए जाने वाले शोषण को सीधे निर्लज्ज और बर्बर शोषण में बदल दिया है । "[3]

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप विश्वभर में पूंजीवादी व्यवस्था का निर्माण हुआ । सामंतवाद का स्थान पूंजीवाद ने लिया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो क्षात्र-धर्म का स्थान वणिग्धर्म ने ले लिया ।[4] इसका परिणाम यह हुआ कि पूंजीवादी वर्ग ने उन तमाम व्यवसाय और धन्धों -- जिन्हें अब तक सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था -- के प्रति

सम्मान को समाप्त कर दिया । उसने चिकित्सक, अधिवक्ता , पुजारी , कवि तथा बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक सभी को मात्र वेतनभोगी श्रमजीवी में परिवर्तित कर दिया । यदि किसी के पास धन-संपत्ति है तो वह अपनी सेवा में चाहे जितने विशेषज्ञों को वेतन देकर रख सकता है । ज्ञान और बुद्धि जब क्रय-विक्रय का सामान हो जाते हैं तब मूल्यों का ह्रास होता है ।

"पूंजीवाद ने लाखों उत्पादकों की संपत्ति हड़पकर उन्हें ~~समूह~~ समर्थ बनाने के महान कार्य को तो संपन्न किया , परन्तु इस समरूपण में व्यक्ति की श्रम-शक्ति नष्ट हो गई । श्रम-शक्ति जब क्रय की वस्तु बन जाती है , उसका नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक मूल्य नष्ट हो जाता है । " [5]

संक्षेप में औद्योगिक क्रांति और तज्जन्य पूंजीवादी व्यवस्था के निर्माण के कारण जिस जटिल सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हुआ उसके सम्पूर्ण व सभी आयामों को समाकलित व विश्लेषित करने के लिए एक नयी काव्य-विधा की आवश्यकता थी , जिसकी पूर्ति योरोप में "नोवेल" के रूप में हुई ।

उपन्यास का ~~व्यावर्तक~~ व्यावर्तक लक्षण :

आलोच्य लेखक ऋषभचरण जैन प्रेमचन्दकालीन कथाकार , विशेषतः उपन्यासकार , हैं अतः उपन्यास के व्यावर्तक लक्षण को जान-समझ लेना अनिवार्य हो जाता है । ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास इस नये युग के नये मनुष्य की नयी विधा है । औद्योगीकरण , नगरीकरण, मध्यवर्ग का उदय , मनुष्य का निरंतर वेतनभोगी होते जाना , इन सब कारणों से हमारा साम्प्रतिक-जीवन निरंतर पेचीदा व जटिल होता जा रहा है । जीवन के इस परिवर्तित जटिल स्वरूप को रूपायित करने के लिए संसार के प्रायः सभी लेखकों को औपन्यासिक रूपबंध अधिक अनुकूल लगा है । उसमें समाज के यथार्थ-चित्रण पर सविशेष बल दिया गया है । उपन्यास की अनेकानेक परिभाषाओं में इसी यथार्थ के तत्व को ही बारंबार रेखांकित किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थधर्मिता उपन्यास का प्राणतत्व है । यहां पर डा. पारूकांत देसाई का यह मत उल्लेख्य समझा जायेगा — " उपन्यास और काव्य में यह मौलिक अंतर है कि उपन्यास मौजूदा हालात को भुलाकर भविष्य की कल्पना नहीं

नहीं कर सकता , जबकि काव्य वर्तमान स्थिति की संपूर्ण उपेक्षा कर अपने आदर्श घड़ सकता है । महाकाव्य वह देता है जो हम बनना चाहते हैं । उपन्यास वह देता है जो हम हैं । यहां तक कि ऐतिहासिक उपन्यास भी किसी-न-किसी प्रकार से साम्प्रतिक समस्या से जुड़े हुए रहते हैं । " 6

वैसे तो आजकल सभी विधाओं में यथार्थ का आग्रह बढ़ रहा है , तथापि इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उपन्यास के लिए यथार्थ-निरूपण एक ~~अवश्य~~ अनिवार्य शर्त है । यहां पर उपन्यास पुराने महाकाव्यों तथा नाटकों से भिन्न पड़ता है । उसमें प्राचीन मिथकों तथा चमत्कारपूर्ण घटनाओं को आधुनिक संदर्भ में , तर्क और यथार्थता की कसौटी पर रखा जाता है । यहां पर हनुमान , जाम्बुवत , सुग्रीव , वाली , अंगद इत्यादि को पूंछधारी बन्दर नहीं बताया जा सकता । उन्हें दक्षिण-प्रदेश में रहने वाली एक जाति-विशेष के रूप में ही लिया जायेगा । हनुमान का उड़कर समुद्र को लांघना या लक्ष्मण को शक्ति लगने पर उड़कर जड़ी-बूटी के लिए पूरी पहाड़ी उठा लाना जैसी चमत्कारिक घटनाएं औपन्यासिक रूपबंध में नहीं चल सकती । किसी-न-किसी प्रकार उसका आधुनिकीकरण करना या विज्ञान-सम्मत रूप निकालना ही पड़ेगा । उदाहरण के लिए हम डा. नरेन्द्र कोहली द्वारा प्रणीत ~~उपन्यास~~ उपन्यास "दीक्षा" को ले सकते हैं । रामायण की वस्तु को लेकर कोहलीजी ने एक उपन्यासमाला की सृष्टि की है , "दीक्षा" उसकी प्रथम कड़ी है । इस उपन्यास में कोहलीजी ने कई पुराने मिथकों को तोड़ा है , जैसे शिव की परिकल्पना एक महासत्ता के रूप में हुई है । जैसे साम्प्रतिक युग में अमरिका , रूस प्रभृति महासत्ताएं अपनी प्रयोगशालाओं में नित्य-नवीन शस्त्रास्त्रों को अन्वेषित करते रहते हैं और विश्वभर के छोटे-मोटे देश आवश्यकतानुसार उनसे शस्त्रास्त्र लेते रहते हैं , उसी प्रकार किसी काल-विशेष में विभिन्न जातियों के लोग नवीन शस्त्रास्त्र पाने के लिए शिव के ~~कृपाकांक्षी~~कृपाकांक्षी बने रहने की होड़ [स्पर्द्धा] में लगे रहते थे । 6-9

राम के शिव-धनुष भंग को भी लेखक दूसरे तर्कसंमत-ढंग से लेता है । रामायण की भांति उसमें कोई विशेष सीता-स्वयंवर का समारोह नहीं

होता , बल्कि यह बताया गया है कि सीरध्वज राजा जनक सीता को वीर्य-शुल्का घोषित करते हैं और अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न प्रदेश के राजकुमार मिथिला आकर शिव-धनुष को उठाने का प्रयत्न करते हैं । इसी क्रम में राम-लक्ष्मण भी विश्वामित्र ऋषि के साथ मिथिला जाते हैं तब जनक की यंत्र-शाला में विश्वामित्र राम को उसके विषय में , उसकी संचालन-विधि को लेकर कुछ गोपनीय सूत्र बताते हैं । फलतः राम शिव-धनुष को भग करने में सफल होते हैं ।[7]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि उपन्यास का व्यावर्तक लक्षण उसकी यथार्थधर्मिता है । इस यथार्थधर्मिता के आग्रह के कारण ही पौराणिक-सूत्रों पर आधारित उपन्यासों में तर्क-संगत विश्लेषण प्रस्तुत करना पड़ता है । उपन्यास की इस यथार्थधर्मिता परिलक्षित करने के लिए नीचे कतिपय उपन्यास-विषयक परिभाषाओं को दिया जा रहा है :-

/1/ उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।[8] /2/ " मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।[9] /3/ उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है ।[10] /4/ उपन्यास शब्द "उप" {समीप} तथा "न्यास" {थाती} के योग से बना है जिसका अर्थ हुआ {मनुष्य के} निकट रखी हुई वस्तु । अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है । इसमें हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है ।[11] /5/ उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है ।[12] /6/ उपन्यास मनुष्य के सामाजिक या वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है , जो प्रायः एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।[13]

उपर्युक्त परिभाषाओं के समाकलन से एक तथ्य जो असंदिग्ध रूप से प्रतिफलित होता है वह यह कि उपन्यास में यथार्थ का निर्वाह एक आवश्यक

और अनिवार्य शर्त है । कदाचित् इसीलिए डा. देवीशंकर अवस्थी द्वारा संपादित "विवेक के रंग " नामक ग्रंथ में औपन्यासिक-साहित्य की आलोचना करने वाले विभाग को "यथार्थ की पहचान" जैसा शीर्षक दिया है ।[14]

उपन्यास की विकास-यात्रा :

~~ऋषभचरण~~ जैन प्रेमचन्दयुग के औपन्यासिक हैं, अतः उनके कृतित्व के मूल्यांकन के लिए प्रेमचन्दयुग तक के औपन्यासिक-विकास को देख-परख लेना ही समुचित ही कहा जायेगा । हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक स्वरूप प्रेमचन्द से मिला । हिन्दी उपन्यास-साहित्य के मूर्धन्य आलोचक डा. इन्द्रनाथ मदान तो "गोदान" को ही हिन्दी का प्रथम यथार्थवादी उपन्यास मानते हैं ।[15]

डा. रामविलास शर्मा "सेवासदन" को हिन्दी उपन्यास की प्रथम उपलब्धि मानते हैं ।[16] डा. गणेशन के मतानुसार प्रेमचन्द के द्वारा हमें सर्वप्रथम मानव-चरित्र की पहचान मिलती है ।[17] तात्पर्य यह कि "हिन्दी-उपन्यास" और "प्रेमचन्द " परस्पर ~~के~~ पर्याय हो चुके हैं । अतः हिन्दी ~~उपन्यास~~ उपन्यास की विकास-यात्रा का विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द को एक शकवर्ती (चक्रवर्ती) स्थान दिया जाता है । फलतः औपन्यासिक विकास-यात्रा के सोपानों को प्रेमचन्दपूर्व काल, प्रेमचन्द काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल यों तीन मुख्य शीर्षकों के तहत रखा जाता है ।

प्रेमचन्दपूर्व काल के औपन्यासिकों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, मेहता लज्जाराम शर्मा, पं. बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मन्नन द्विवेदी, बाबू गोपालराम गहमरी, बाबू देवकीनन्दन खत्री प्रभृति लेखकों को परिगणत कर सकते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरु" (सन् 1882) को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है ।[18] स्वयं लाला श्रीनिवासदास ने उपन्यास की भूमिका में उसके "नये चाल की पुस्तक " होने का संकेत दिया है ।[19] कदाचित उसे लक्षित करते हुए आचार्यश्री ने उक्त स्थापना की होगी, परन्तु अब

यह निश्चयतया स्थापित हो चुका है कि पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा लिखित "भाग्यवती" उपन्यास ही हिन्दी का प्रथम उपन्यास है । आगे प्रेमचन्द द्वारा समस्यामूलक उपन्यासों की जो एक सुदीर्घ परंपरा चली उसका सूत्रपात ही हमें "भाग्यवती" में मिलता है । यह भी एक सुखद संयोग है कि वह आधुनिक युग की एक सर्वाधिक आधुनिक कही जाने वाली प्रवृत्ति -- स्त्री-शिक्षा की प्रवृत्ति -- को लेकर चला है । यह एक स्वस्थ लक्षण है कि ~~हिन्दी का प्रथम उपन्यास~~ हिन्दी उपन्यास उसके विकास के प्रथम चरण में ही एक स्वस्थ प्रगतिकामी परंपरा को लेकर चला है ।

वस्तुतः प्रेमचन्दपूर्व काल में हमें दो कोटि के लेखक मिलते हैं -- /1/ सुधारवादी और /2/ परंपरावादी या सनातन पंथी । पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , अयोध्यासिंह उपाध्याय , मन्नन द्विवेदी आदि लेखक नवसुधारवादी हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक-प्रगति में बाधक ऐसी पारंपरिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए समाज को अग्रसरित करने का प्रयत्न किया है । दूसरी तरफ किशोरीलाल गोस्वामी , राधाचरण गोस्वामी , मेहता लज्जाराम शर्मा जैसे लेखक सनातनवादी थे जिन्होंने भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को ही श्रेष्ठ करार देते हुए नवीनता के उन तमाम आयामों का विरोध किया । एक उदाहरण द्रष्टव्य है । पं. श्रद्धाराम ~~फल्ल~~ फुल्लौरी के उपन्यास "भाग्यवती" में जहां नारी-शिक्षा के आयाम को सर्वाधिक व गुणात्मक महत्व दिया गया है , वहां मेहता लज्जाराम शर्मा कृत उपन्यास " स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी " ‹1899› में लेखक ने नारी-शिक्षा का विरोध किया है । प्रस्तुत उपन्यास में निरूपित रमा एक शिक्षित युवती है , अतः अपने स्वतंत्र विचारों के कारण परिवार से तालमेल नहीं बिठा पाती । फलतः उसका दाम्पत्य-जीवन बुरी तरह से असफल रहता है । दूसरी तरफ लक्ष्मी पढ़ी-लिखी न होने कारण अपने परिवार के कहे में रहती है और फलतः उसका दाम्पत्य-जीवन सफल रहता है । इस प्रकार यह उपन्यास "भाग्यवती" के बिलकुल दूसरे छोर पर है ।

किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी

यथार्थ के स्थान पर रोमांस अधिक है । ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों को लेखक अपनी कल्पना से अतिरंजित तो कर सकता है , परन्तु मूलगत ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह तो उसे करना ही पड़ता है । गोस्वामीजी के उपन्यासों में इतिहास कम और कल्पना ज्यादा है । ऐसे उपन्यासों को डा. भारतभूषण अग्रवाल ने ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर "ऐतिहासिक - रम्याख्यान " (हिस्टोरिकल रोमान्स) कहा है , जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा मन-गढ़न्त कल्पनाओं को प्राधान्य दिया जाता है ।[20]

ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए जो अध्ययन और परिश्रम चाहिए , दूसरे इस क्षेत्र के किसी अन्य लेखक की कृतियों का अध्ययन चाहिए । इन दोनों बातों का गोस्वामीजी में नितान्त अभाव मिलता है । हिन्दी के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने स्कोट के उपन्यासों का बड़े मनोयोग से अध्ययन किया है । यही नहीं , उन्होंने अपनी जन्मभूमि बुंदेलखण्ड के इतिहास और जीवन का भी गहरा अनुशीलन किया है ।[21] तात्पर्य यह कि गोस्वामीजी में न वह ऐतिहासिक दृष्टि है , न कठिन अध्यवसाय , जिनकी ऐसे उपन्यासों में आवश्यकता रहती है । प्रसिद्ध उपन्यासकार जायस केरी इस सम्बन्ध में बताते हैं — " मि. केरी ~~एक्सप्लेइण्ड~~ एक्सप्लेइण्ड थेट ही वाज़ नाउ " प्लोटिंग " द बुक . थेर वाज़ रीसर्च येट टू बी डन . " रीसर्च " ही एक्स-प्लेइण्ड , वाज़ समटाइम्स एण्ड ओर , बट इट वाज़ नेसेसरी फार गेटिंग द पोलिटिकल एण्ड सोशियल बेकग्राउण्ड आफ होज वर्क-राईट . "[22] तात्पर्य कि अपनी रचना को समग्रता देने के लिए वे बहुत परिश्रम से शोधकार्य करते हैं । अभिप्राय यह कि इस प्रकार के उपन्यासों के लिए काफी खोजबीन करनी पड़ती है , जिसमें अध्यवसाय व प्रतिभा की आवश्यकता रहती है । कहने की आवश्यकता नहीं कि गोस्वामीजी में इन तीनों का ही अभाव मिलता है ।

मेहता लज्जाराम शर्मा भी इस काल-खण्ड के एक प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं । उनकी भाषाशैली मंजी हुई , व्यंग्योन्मुखी और यथार्थलक्षी दृष्टिगत होती है , परन्तु उनकी विचारधारा भी वही किशोरीलाल गोस्वामी

वाली विचारधारा थी, जिसमें वे हर पुरानी वस्तु की प्रशंसा और नयी की आलोचना करते थे। अपनी इस पुरानपंथी विचारधारा के कारण वे हिन्दी उपन्यास को कोई विशेष गति न दे सके।

बाबू देवकीनन्दन खत्री और बाबू गोपालराम गहमरी इन दोनों उपन्यासकारों के कारण हिन्दी उपन्यास को जहां एक तरफ लाभ हुआ है, वहां दूसरी तरफ हानि भी हुई है। लाभ यह कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास को लोकभोग्य व लोकप्रिय बनाया। ऐसा कहा जाता है कि देवकीनंदन खत्री के तिलस्मी उपन्यास "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता सन्तति" की लोकप्रियता उस सीमा तक पहुंच गई थी कि कुछ लोगों ने केवल इन्हें पढ़ने के लिए ही हिन्दी भाषा का अध्ययन किया।[23]

बाबू गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों का सूत्रपात किया। जासूसी लेखन को लेकर उनकी प्रतिश्रुतता सुविदित है। वे "जासूस" नामक एक पत्रिका निकालते थे जिसमें जासूसी कहानियां और जासूसी धारावाहिक उपन्यास प्रकाशित होते रहते थे। उन्होंने लगभग दो सौ के उपरान्त जासूसी उपन्यास लिखे हैं। उन्हें हिन्दी का "कानन डायल" समझा जाता है।

परन्तु उक्त दोनों प्रकार के उपन्यास यथार्थ से दूर पड़ते हैं। तिलस्मी उपन्यास जहां केवल वायवी सृष्टि का निर्माण करते हैं और पाठकों को चमत्कार की भूल-भुलैया में ले जाते हैं, वहां जासूसी उपन्यास यथार्थ की पृष्ठभूमि रखते हुए भी केवल मनोरंजनात्मक होने के कारण उपन्यास की साहित्यिक गरिमा को हानि पहुंचाते हैं। उपन्यास के लिए कहा भी गया है — " ए नोवेल इज़ नोट मीयरली ए स्टोरी, इट इज़ समथिंग ग्रेटर धेन स्टोरी। " परन्तु उक्त दोनों प्रकार के उपन्यासों में कहानी के अतिरिक्त का वह "समथिंग" बिलकुल नदारद है। केवल कहानी तो कोई भी कह सकता है, परन्तु उपन्यासकार केवल कहानी कहकर मनोरंजन मात्र नहीं देता। वस्तुतः कहानी के माध्यम से वह अपनी विचारधारा व्यक्त करता है। बिना इस विचारधारा या चिंतन के उपन्यास का कोई मूल्य

नहीं होता । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ऐसे उपन्यासों को "घासलेटी" संज्ञा देते हैं ।[24] यहां यह विचारणीय होगा कि उच्च साहित्यिक स्तर के उपन्यासों में हमें उसके लेखक का एक निश्चित जीवन-दर्शन मिलता है, जिस पर वह चट्टान की मानिंद अड़िग रहता है । इस संबंध में महान औपन्यासिक थैकरे के विचार उल्लेखनीय समझे जायेंगे -- " फ्रोम एवरी सेन्टन्स, फ्रोम एवरी पेज, फ्रोम एवरी चेप्टर, ए वेल-रीटन नोवेल, इकोड एण्ड रीइकोड इट्स वन कन्ट्रोलिंग थोट . "[25]

अर्थात् उच्च साहित्यिक स्तर के उपन्यासों में प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक परिच्छेद तथा प्रत्येक प्रकरण से उसके लेखक के विचारों की गूंज और अनुगूंज उठती है । इस दृष्टि से पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, पं. बालकृष्ण भट्ट, मन्नन द्विवेदी, पं. किशोरीलाल गोस्वामी प्रभृति लेखकों में उनकी अपनी-अपनी विचारधाराएं प्रतिबिम्बित हुई हैं । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ रहा था, उसमें उक्त दो लेखक -- बाबू देवकीनंदन खत्री तथा गोपालराम गहमरी -- के कारण गतिरोध पैदा हुआ । यह वह हानि है जो हिन्दी उपन्यास को हुई । हिन्दी उपन्यास को आगे बढ़ाने के बजाय वे पीछे ले गये ।

हिन्दी उपन्यास में उत्पन्न इस गतिरोध को प्रेमचन्द ने दूर किया । प्रेमचन्द पहले उर्दू में नवाबराय नाम से लिखते थे । उर्दू जबान पर उनका जो काबू था उसे देखकर उर्दू के बड़े-बड़े अदिब भी ईर्ष्या करते थे । परन्तु उनकी "सोजेवतन" की कहानियों में "इन्कलाबी आग" को लक्षित करते हुए अंग्रेज सरकार ने उसकी तमाम कापियां जला डाली । इसके बाद उन्होंने "प्रेमचन्द" नाम से हिन्दी में लिखना शुरू किया । यह घटना सन् 1918 की है । प्रेमचन्द का निधन सन् 1936 में हुआ । यों इन 18 वर्षों का जो कथा-साहित्य है उसे "प्रेमचन्द-युग" संज्ञा से अभिहित किया गया है, क्योंकि प्रेमचन्द न केवल एक महान लेखक है, बल्कि अपने आप में एक संस्था होने के सबब एक युग-निर्माता भी है । यह ध्यातव्य रहे कि कविता के क्षेत्र में इसी काल-खण्ड को "छायावाद" कहा गया है । --

प्रेमचन्दयुग :

हिन्दी उपन्यास के विकास के द्वितीय सोपान को प्रेमचन्दयुग कहा गया है क्योंकि हिन्दी-उपन्यास की विकास-यात्रा में प्रेमचन्दजी का स्थान मेरूदण्ड के समान है । उनके कारण हिन्दी उपन्यास को एक गति और गरिमा प्राप्त हुई है । प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यासों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद नहीं होता था । प्रेमचन्द ने उसे वह गौरव प्रदान किया कि प्रेमचन्द के आविर्भाव-काल से हिन्दी उपन्यासों का अन्य भाषाओं में अनुवाद होने लगे । वस्तुतः हिन्दी उपन्यास जो कुछ समय के लिए बाबू देवकीनंदन खत्री तथा बाबू गोपालराम गहमरी के कारण पथभ्रष्ट हो गया था , प्रेमचन्द उसे पुनः सही राह पर ले आयें । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में " चन्द्रकान्ता और " तिलस्मे होशरूबा " के पढ़ने वाले लाखों थे । प्रेमचन्द ने इन लाखों पाठकों को अपनी तरफ ही नहीं खींचा , " चन्द्रकान्ता " में अरूचि भी पैदा की । जनरूचि के लिए उन्होंने नये मापदण्ड कायम किये और साहित्य के नये पाठक और पाठिकाएं भी पैदा किये , यह उनकी जबरदस्त सफलता थी । " [26]

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , मन्नन द्विवेदी आदि ने सामाजिक उपन्यासों का पथ प्रसस्त किया था ; लेकिन उस युग में ऐसे उपन्यासों को पढ़ने वालों की संख्या ज्यादा नहीं थी क्योंकि साहित्यिक दृष्टि से उनमें कई प्रकार की क्षतियां और अपरिपक्वता थी । प्रेमचन्दजी ने उन क्षतियों का परिहार किया और हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता का समावेश किया । डा. गणेशन के मतानुसार प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में मानव-चरित्र का अभाव-सा दिखता था । मानव-चरित्रों का निर्माण करके प्रेमचन्द ने उस अभाव की पूर्तता की ।[27]

प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य अपरिपक्व , एकांगी , स्थूल घटनात्मक , मनोरंजनप्रधान , सतही , बोधप्रधान तथा जीवन-दृष्टि शून्य था । प्रेमचन्द ने उसमें नयी चेतना जगाई और उसे पुष्ट , बहुआयामी ,

सूक्ष्म-चरित्र-लक्षी , सोद्‌देश्य और मानवतावादी-दृष्टि संपन्न बनाया । मानवीय संवेदना प्रेमचन्दजी की सबसे बड़ी पूंजी है । इसलिए प्रेमचन्दजी की प्रासंगिकता के मुद्‌दे पर एक संगोष्ठी में चर्चा करते हुए अज्ञेयजी ने कहा था कि जब तक प्रेमचन्द से बड़ी मानवीय संवेदना हम अपने बीच नहीं ला पाते तब तक प्रेमचन्द पुराने होते हुए भी हम नयों के " मार्गदर्शक " बने रहेंगे ।[28]

प्रेमचन्दजी एक लोकधर्मी साहित्यकार थे और लोकधर्मी साहित्यकार की रचनाधर्मिता जन-सागर से तरंगायित होती रहती है । वह जीवन से तादात्म्य स्थापित करता है और जीवन के इन सच्चे सार्थक अनुभवों पर उसका साहित्य रचा जाता है । आले पर रखी हुई पुस्तकों से वह अपने साहित्य का निर्माण नहीं करता ।

प्रेमचन्दजी का आविर्भाव उनके उपन्यास "सेवासदन" §1918§ से हुआ । "सेवासदन" पहले उर्दू में "बाजारे हुस्न " के रूप में ~~प्रकाशित हो चुका~~ लिखा जा चुका था , परन्तु प्रकाशन पहले हिन्दी में सन् 1918 में हुआ । प्रथम होते हुए भी उसमें प्रेमचन्दजी की चौमुखी सामाजिक-दृष्टि का सर्वप्रथम परिचय मिलता है । डा. रामदरश मिश्र के शब्दों में "सेवासदन" उपन्यास काल और समस्याओं की पकड़ तथा चित्रण दोनों दृष्टियों से पहला परिपक्व उपन्यास है ।[29]

हिन्दी में प्रेमचन्दजी की प्रथम प्रौढ़ रचना "सेवासदन" ही है , वैसे उनके उपन्यास "वरदान" का प्रकाशन सन् 1920 में हुआ था , परन्तु वस्तुतः वह "सेवासदन" से पहले की कृति है । उर्दू में उसका प्रकाशन पहले सन् 1912 में "जलवा-ए-ईसार " नाम से हो चुका था ।[30] परन्तु सामाजिक समस्याओं के निरूपण की दृष्टि से प्रेमचन्दजी की प्रथम महत्त्वपूर्ण कृति "सेवासदन" ही ठहरती है । समस्याओं की पकड़ , व्यंग्यात्मकता , कथा-संघटन एवं चरित्र-चित्रण सभी दृष्टियों से वह एक प्रौढ़ रचना सिद्ध होती है । प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में प्रधान एवं केन्द्रवर्ती समस्या मानवीय-शोषण की रही है । अशिक्षा , परावलंबिता , हजारों वर्ष पुरानी रूढ़ियों

आदि के द्वारा होता हुआ नारी का शोषण ; अशिक्षा , आपसी फूट , अंध-विश्वास , रूढ़िवादिता , पठानी सूद वाला ऋण , जमींनदार , इनके कारिन्दे , महाजन , पुलिस , सरकारी अमलेxx अमले आदि के द्वारा होता हुआ कृषक-समाज का शोषण तथा अंग्रेजों और उनके देशी पिट्ठुओं -- राजा महाराजा , पूंजीपति इत्यादि के द्वारा होता समूचे देश का शोषण -- इस प्रकार ये तीनों प्रकार के शोषण और उनका तथ्यवादी यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल प्रतिपाद्य रहा है ।

"प्रेमाश्रम" (1920) किसानों और जमींदारों के पारस्परिक संबंध एवं संघर्ष को स्थापित करने वाला एक बहुआयामी उपन्यास है । उसमें ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की टकराहट का स्पष्टरूपेण चित्रांकन हुआ है । डा. गणेशन के शब्दों में " भारत की सामान्य जनता का जागरण और अपने हक के लिए लड़ाई भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग है और इस जागरण पर लिखित प्रथम और श्रेष्ठ उपन्यास के रूप में 'प्रेमाश्रम' महत्त्वपूर्ण रचना है । " 31

प्रेमचन्दजी के उपन्यासों पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उनके परवर्ती उपन्यासों के बीज "सेवासदन" में किसी-न-किसी रूप में मिल जाते हैं । "प्रेमाश्रम" उपन्यास के मनोहर और बलराज "सेवासदन" के चेतू के ही विकसित रूप हैं जो जुल्म और अन्याय का प्रतिकार करते हैं । इस उपन्यास के सम्बन्ध में डा. रामदरश मिश्र लिखते हैं -- " प्रेमाश्रम में जमींदारों के अत्याचार के साथ पुलिस वालों के जुल्म , रक्षा के नाम पर तैनात अफसरों और उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के अंधेर , साहूकारों की ठगी , वकीलों की स्वार्थपरायण क्षुद्रताओं और न्यायधीशों के अन्याय को जोड़ दिया गया है । प्रेमचन्द की पैनी दृष्टि इस बात को xxxxx पहचानती है कि एक ओर स्वार्थपरायण शोषक-वर्ग चालाक है , पढ़ा-लिखा है , दुष्ट है और स्वार्थ के स्तर पर एक है तो दूसरी ओर किसान भोले-भाले हैं और छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए आपस में फूट पैदा कर लेते हैं , किन्तु प्रेमचन्द इसको स्पष्ट करते हैं कि किसानों की दरिद्रता , उनकी नादानी , आपसी फूट यह सभी वर्तमान शासन द्वारा जान-बूझकर पैदा

किये गए हैं ताकि उनके रक्त और मांस पर शासन निश्चिंत भाव से प्रतिष्ठित रहे । " [32]

इस उपन्यास का प्रेमशंकर एक आधुनिक चेतना-संपन्न युवक है जो किसानों के लिए अपने अधिकार छोड़ देता है । सामान्य तौर पर यह कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है, परन्तु उस काल की राष्ट्रीय चेतना और वैश्विक वैचारिक प्रवाहों के आलोक में देखेंगे तो ज्ञात होगा कि प्रेमशंकर नयी चेतना का वाहक है जिसे लेखक ने तत्कालीन सत्य के रूपायन के लिए चुना है । इस बृहदकाय उपन्यास में हजारों वर्षों से पददलित कृषक समाज उसकी अज्ञानता, भीरुता, जमींदारों और उनके कारिन्दों के अत्याचार तथा उसके समाधान के रूप में हाजीपुर नामक एक आदर्श ग्राम की रचना तथा उसमें प्रेमाश्रम की स्थापना आदि चित्रित किया गया है । उपन्यास के अंतिम अंश से प्रेमचन्दजी की तत्कालीन आदर्शवादिता और अतिभावुकता का परिचय होता है । यहां उनका आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद मिलता है ।

"प्रेमाश्रम" के पश्चात् "रंगभूमि" (1925) प्रेमचन्दजी का एक बहुवस्तुलक्षी उपन्यास है । इसमें उन्होंने औद्योगीकरण की समस्या को उठाया है । गांधीजी की तरह प्रेमचन्दजी भी नहीं चाहते थे कि देश का किसान मजदूर हो जाये, अतः उपन्यास का सूरदास जानसेवक के सिगरेट के कारखाने का जी-जान से विरोध करता है । यह उपन्यास महात्मा गांधी तथा उनके राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखा गया है । इसमें प्रेमचन्दजी जहां विनयसिंह और सोफिया के प्रेम के द्वारा एक प्रगतिशील आयाम प्रस्तुत करते हैं, वहां सूरदास एवं उनके परिवेश की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन को प्रतीकात्मक ढंग से उभारते हैं । तत्कालीन समाज में एक वर्ग ऐसा था जो एक तरफ तो अंग्रेज हाकिमों की चाटुकारी करता था और दूसरी तरफ लोगों की सेवा का दम भी भरता था । राजा महेन्द्रसिंह इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । अंग्रेजी राज्य का प्रतिनिधि "क्लार्क"

सूरदास जैसे सच्चे और खरे लोगों से तो डरता है , परन्तु राजा महेन्द्रसिंह या विनयसिंह जैसे लोगों से नहीं डरता , क्योंकि वह भलीभांति जानता है कि ऐसे चाटुकार लोग अंग्रेजी राज्य का बाल भी बांका नहीं कर सकते । उसे खतरा सूरदास जैसे लोगों से है जिनके इरादे चट्टान की तरह मजबूत हैं और जो सच्चाई के लिए लड़ रहे हैं । अतः एक स्थान पर क्लार्क राजा महेन्द्रप्रतापसिंह से कहता है कि " हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है , भय ऐसे मनुष्यों से हैं जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं । " [33] साम्प्रत समय में बम्बई के उपायुक्त [डेप्यूटी कमिश्नर] श्री. गोविन्द राधोखैरनार , सामाजिक कार्यकर अन्ना हजारे तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त श्री. xxxx शेसान महोदय ऐसे ही सूरदास जैसे लोग हैं जो लोगों के हृदयासन पर विराजित होने के कारण शासक-वर्ग को शूल की तरह चुभ रहे हैं ।[34]

"रंगभूमि" में ताहिरअली का भी एक चरित्र आया है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचन्दजी का ही आर्थिक-पारिवारिक संघर्ष ताहिरअली के रूप में रूपायित हुआ है ।

"रंगभूमि" की पात्र-विविधता से प्रेमचन्द के बढ़ते हुए औपन्यासिक कौशल का परिचय मिलता है । इस सम्बन्ध में डा. रामविलास शर्मा का यह मत उल्लेखनीय है -- " इसमें राजा , तालुकेदार , पूंजीपति, अंग्रेजी हाकिम , किसान -- हिन्दुस्तानी जीवन की एक विशद झांकी देखने को मिलती है । नायकराम का हास्य , सोफिया की सरलता , विनय का साहस , राजा महेन्द्रप्रतापसिंह की धूर्तता , जानसेवक की स्वार्थपरता , वीरपाल का साहस , सूरदास की दृढ़ता पाठक के हृदय पर गहरी छाप छोड़ जाते हैं । अभी तक प्रेमचन्द के किसी भी उपन्यास में इतने अविस्मरणीय पात्र एक साथ न आये थे । यह उनके बढ़ते हुए कौशल का परिचय था । " [35]

"रंगभूमि" का सूरदास स्वयं को खिलाड़ी कहता है । यह संसार उसके लिए एक रंगभूमि है । रंगभूमि में हार-जीत तो लगी रहती है । वह कहता है -- " हारने में विषाद क्या और जीतने में उल्लास क्या ? खेलना

अपना धर्म है , सच्चाई और ईमानदारी से खेलने वाला अपना कार्य करता चलता है । हार-जीत की चिंता करना उसका कार्य नहीं । अधर्म से खेलकर जीत भी गये तो क्या हो गया और धर्म से खेलकर हार भी गये तो क्या ? खेलनेवालों की परंपरा तो लगी रहेगी । कभी न कभी तो जीतेंगे ही । "[36] सूरदास के इन शब्दों में मानो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के सुर ही गुंजित हो रहे हैं । संक्षेप में "रंगभूमि" तत्कालीन भारतीय सामाजिक-राजनैतिक परिवेश को व्याख्यायित करने वाला , प्रेमचन्दजी का एक सशक्त , महत्व-पूर्ण और अविस्मरणीय उपन्यास है ।

प्रेमचन्दजी के इन सभी उपन्यासों में "कायाकल्प" ही एक ऐसा उपन्यास है , जो प्रेमचन्द की मुख्य विचारधारा से थोड़ा अलग हटा हुआ-सा प्रतीत होता है । इसमें रानी देवप्रिया और उसके पति के पूर्व जन्मों के वृतान्त को लेकर कथा की संयोजना हुई है जो किसी तिलस्मी कहानी से कम नहीं लगती और इसीलिए प्रेमचन्द के पाठक को थोड़ा आश्चर्य व खटका होना स्वाभाविक है । इस सन्दर्भ में डा. गणेशन के विचार उल्लेखनीय रहेंगे-- " शायद भारत के हिन्दू-समाज में रूढ़ मूल अंधविश्वासों और मूढ़ परंपराओं को दिखाना ही प्रेमचन्द का ध्येय रहा है । "[37] परन्तु ऐसे नितान्त काल्पनिक एवं तिलस्मी से लगने वाले उपन्यास में भी प्रेमचन्दजी ने कुछ तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं को मूल कथा से अनुस्यूत कर दिया है , जिनमें हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या को ले सकते हैं जो एक तरह से अभी तक बनी हुई है ।

"कर्मभूमि" प्रेमचन्दजी के श्रेष्ठ प्रौढ़काल की रचना है । इसका कथानक राजनीतिक आंदोलनों पर आधारित है । अछूतोद्धार , जमींदार-किसान संघर्ष , ऋण और सूदखोरी आदि समस्याएं यहां भी जुड़ी हुई हैं । जिस प्रकार "प्रेमाश्रम" उपन्यास में प्रेमशंकर का "प्रेमाश्रम" मिलता है , उसी प्रकार यहां पर डा. शांतिकुमार का "सेवाश्रम" मिलता है । उपन्यास में चलने वाले सारे आंदोलनों के केन्द्र में यही "सेवाश्रम" है । डा. गणेशन

ने इस उपन्यास के सन्दर्भ में लिखा है -- " कथानक तथा पात्रों के जीवन-वृत्तों के साथ-साथ इसमें चित्रित वातावरण भी कम महत्व का नहीं है । अत्यन्त विशाल पटभूमि का उपयोग करने के कारण कथानक में तथा पात्रों के जीवन-वृत्तों के क्रमिक विकास में थोड़ी-बहुत स्थूलता आई है । इसी कारण देश के तत्कालीन वातावरण को यथार्थ रूप में उपस्थित करने में लेखक को विशेष सफलता भी प्राप्त हुई है । "[38] यह उपन्यास प्रेमचन्द के लेखन में अनेक बातों की पहल करता है । इस सन्दर्भ में डा. बन्दोपाध्याय के निम्न विचार ध्यातव्य हैं --

" प्रेमचन्द हेड स्टडीड द युनिवर्सल डीप्रेशन आफ 1929-30 एण्ड इट्स वर्स फिनोमीनल इम्पेक्ट ओन इंडियन लाईफ पर्टिक्युलरली द पुअर मासिस. इट इज़ द फर्स्ट नोवेल इन व्हीच द ओल्डर जनरेशन शेक्स ओफ ओल इट्स वेल्यूज़ एण्ड इण्टरेस्ट्स एण्ड फोलोज़ द लीड ओफ द न्यू जनरेशन इन द नेशनल वर्क. इट इज़ ओल्सो द फर्स्ट नोवेल इन हीज केनन इन व्हीच द ओथर हेज डिपिक्टेड द सक्सेसफुल फाईट अगेन्स्ट द कास्टिजम एण्ड द सेटिंग अप ओफ इण्टर कोम्युनल हारमनी इन व्हीच बोथ द ओल्ड एण्ड द न्यू जनरेशन बीकम इक्वल कनसोर्ट्स. "[39]

दहेज-प्रथा हिन्दू-समाज का एक महान ~~कलंक~~ कलंक है । इसके कारण अनेक अरमानभरी कोमल कलिकाओं को अपना जीवन बलिवेदी पर चढ़ा देना पड़ता है । वस्तुतः हिन्दू धर्म का चिन्तन मूलग्राही एवं व्यापक रहा है । पिता की संपत्ति में कन्या का भी अधिकार होता है । अतः प्रारंभ में कन्या के माता-पिता उसके विवाह के समय उसकी संपत्ति के हिस्से के रूप में यथाशक्ति कन्यादान देते थे । परन्तु बादमें एक रूढ़ि या परंपरा के रूप में इसका प्रचलन शुरू हो गया । आज यह समस्या भारतीय समाज के देह पर नासूर-सी बन गई है । प्रेमचन्द के समय स्त्री-सुधार संबंधी जो आंदोलन हुए उसके कारण "इण्डियन विमेन्स एसोसिएशन " (भारतीय महिला समिति) तथा "ओल इण्डिया विमेन्स कोन्फरेन्स " जैसे संगठनों की स्थापना क्रमशः 1917 और 1927 में हुई । इन संगठनों ने स्त्री-शिक्षा एवं सुधार-संबंधी जो अनेक कार्य किये उनमें दहेज-प्रथा का

विरोध भी एक अहम मुद्दा था । अतः भला प्रेमचन्दजी उससे अप्रभावित कैसे रह जाते ? "निर्मला" उपन्यास में लेखक ने नारी-जीवन के को नरक बना देने वाली इस भयंकर समस्या को प्रस्तुत किया है । दहेज के कारण सोलह-वर्षीया निर्मला का विवाह तीन बच्चों के बाप ऐसे मुंशी तोताराम से होता है । तोताराम का बड़ा लड़का मंसाराम निर्मला का हमउम्र है । तोताराम निर्मला और मंसाराम के पवित्र संबंधों पर शंका करता है । अतः शंका-कुशंका तथा मानसिक क्लेश के वातावरण में समूचा परिवार नष्ट हो जाता है । "सेवासदन" की सुमन तथा "निर्मला" की निर्मला एक ही समस्या की शिकार हैं , परन्तु दोनों की परिणती भिन्न-भिन्न ढंग से हुई है । निर्मला का अन्त त्रासद परिस्थितियों में होता है , प्रेमचन्द चाहते तो अपने आरंभिक उपन्यास "प्रेमा" की भांति निर्मला का पुनर्विवाह करा सकते थे । परन्तु प्रेमचन्दजी ने ऐसा नहीं किया क्योंकि वे अब समझने लगे थे कि सदियों से सड़ी-गली यह व्यवस्था यों दूर नहीं होगी । अभी थोड़े वर्ष पूर्व सन् 1978 में डा. कमलकिशोर गोयंका ने प्रेमचन्द का एक पत्र प्रकाशित किया था जिसकी निम्नांकित पंक्तियों से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है---- " आई हेड डिसलोज्ड हिन्दू विमेन फ्रोम हर आइडियल बाय शोइंग मेरेज इन द नोवेल " प्रेमा " . आई वाज़ यंग एट धेट टाईम एण्ड द ~~xxxxx~~ स्पिरिट आफ रिफोर्म वाज़ ओवरव्हेलमिंग . " [40]

वस्तु-गठन की दृष्टि से "गबन" भी उनकी एक उल्लेखनीय कृति है । स्त्रियों के आभूषण प्रेम , मध्यवर्गीय झूठी शान तथा पुलिस के हथकंडे आदि का बड़ा ही सटीक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । "मंगलसूत्र" गोदान के बाद का एक अपूर्ण उपन्यास है । उसमें प्रेमचन्दजी ने देवकुमार नामक एक साहित्यकार के जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि देवकुमार प्रेमचन्दजी की ही प्रतिमूर्ति है जिसकी आदर्शवादिता के कारण परिवार के अन्य सदस्य अप्रसन्न एवं असंतुष्ट रहते हैं । इस उपन्यास के लिखित अंश से यह प्रतिभासित होता है कि प्रेमचन्दजी का झुकाव धीरे-धीरे साम्यवाद की ओर हो रहा था ।

"गोदान" में प्रेमचन्दजी की औपन्यासिक कला अपनी चरम सीमा को स्पर्शती हुई दृष्टिगत होती है । "गोदान" तक आते-आते प्रेमचन्दजी की संवेदना एक नया मोड़ लेती है । "गोदान" के इस बदलते हुए स्वर को विश्लेषित करते हुए डा. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं --" यह उपन्यास केवल होरी का "गौदान" नहीं , प्रेमचन्दकी आस्था का भी "गोदान" है । सदनों , निकेतनों , आश्रमों में लेखक की आस्था का गोदान है । उनका विश्वास सुधारवादी -गांधीवादी समाधान से उठ गया है । प्रेमचन्द की संवेदना नया मोड़ लेती है । " 41

वस्तुतः "गोदान" कृषक-जीवन का महाकाव्य है । कृषक-जीवन की ऋण-समस्या को उसमें विशेषतः लक्षित किया गया है । "गोदान" में हम देखते हैं कि पटवारी , चपरासी से लेकर कलेक्टर और डिप्टी कमिश्नर तक की अंग्रेजों की एक पूरी प्रशासनिक मशीनरी है जो किसान के शोषण के पीछे लगी हुई है । जमींदार जब किसी बड़े अफसर को दावत देता है तो उसका बोझा भी बेचारे किसान को उठाना पड़ता है ।

जिस प्रकार "रंगभूमि" में लेखक का सारा ध्यान सूरदास पर केन्द्रित हुआ है , उसी प्रकार यहां लेखक का सारा ध्यान होरी पर ही केन्द्रित हुआ है । होरी छोटे किसान क्ष वर्ग का प्रतिनिधि है । यह वर्ग जो सदियों से अज्ञान , अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के कारण पिसता रहा है , उसका सही-सही चित्रण प्रेमचन्दजी ने यहां किया है । प्रेमचन्दजी एक युगद्रष्टा कलाकार हैं । उन्होंने यह अच्छी तरह देख लिया था कि किसान का शोषण केवल जमींदारों और महाजनों द्वारा ही नहीं होता , बल्कि तमाम लोगों से होता है जो उस महाजनी-सभ्यता और पूंजी-व्यवस्था की देन है । शोषण का यह चक्र ऊपर से नीचे की तरफ जाता है । किसान और मजदूर सबसे नीचे हैं , अतः हमेशा उनको ही दबना पड़ता है और उनसे ऊपर के लोगों के शोषण को बोझ भी उन पर ही जाता है ।

डा. गणेशन के शब्दों में प्रेमचन्दकी विकसित होती हुई यथार्थ दृष्टि का चरमोत्कृष्ट रूप "गोदान" में उपलब्ध होता है । "अप्रयोगिक

आदर्शों , अपरीक्षित सिद्धान्तों तथा अर्ध-परीक्षित वादों से अपने आप का सम्बद्ध रखने के कारण उनके पूर्व-लिखित उपन्यासों में जो विफलताएं और दुर्बलताएं प्रकट हुई थीं , उन सबसे बहुत-कुछ मुक्त होकर वे यहां जीवन मात्र को व्यंजित करने वाली यथार्थवादी कला के राजपथ से अग्रसर होते दिखते हैं । .... कथा-कथन की कुशलता , चरित्र-चित्रण की सुचारुता , समस्याओं के अध्ययन की सूक्ष्मता आदि प्रेमचन्दजी के जितने गुण उनके प्रारंभिक उपन्यासों में प्रकट हो चुके थे वे इसमें अधिक निखरे हुए रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं । पटभूमि अधिक विस्तृत हो गई है , मनोभावों का विश्लेषण अधिक गहरा हो गया है , जीवन की व्याख्या का दृष्टिकोण अधिक संतुलित हो गया है ; और इस तरह "गोदान" यथार्थवाद की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों से कोसों दूर आगे बढ़ आया है । " [42]

प्रेमचन्दयुग के अन्य साहित्यकार :

हमारे आलोच्य उपन्यासकार ऋषभचरण जैन का अधिकांश कृतित्व प्रेमचन्दयुग के अन्तर्गत आता है , अतः उस समय के उपन्यासकारों तथा उनके कृतित्व का उल्लेख यहां अप्रासंगिक न होगा । ऋषभचरण जैन के समकालीनों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" , पं. बेचन शर्मा "उग्र" , चतुरसेन शास्त्री , भगवतीप्रसाद बाजपेयी , प्रतापनारायण श्रीवास्तव , राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह , सियारामशरण गुप्त , गोविन्दवल्लभ पंत , राजेश्वर प्रसाद , धनीराम "प्रेम" , प्रफुल्लचन्द्र ओझा , श्रीनाथसिंह , गंगाप्रसाद श्रीवास्तव , जयशंकर प्रसाद , सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" , चन्द्रशेखर शास्त्री , जैनेन्द्रकुमार , इलाचन्द्र जोशी , भगवतीचरण वर्मा , उषादेवी मित्रा , शिवरानी देवी (प्रेमचन्दजी की पत्नी) , तेजोरानी दीक्षित प्रभृति साहित्यकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इनमें से जैनेन्द्रकुमार , भगवतीचरण वर्मा तथा इलाचन्द्र जोशी का केवल प्रारंभिक कृतित्व ही आलोच्य रचनाकार की परिसीमा में आता है । उनका अधिकांश साहित्य प्रेमचन्द-परवर्ती काल में उपलब्ध होता है । जैनेन्द्र ने "तपोभूमि" उपन्यास ऋषभचरण जैन के सहलेखकत्व में लिखा है ।

इस प्रेमचन्द के समस्यामूलक सामाजिक उपन्यासों का कुछ ऐसा जादू रहा कि उक्त तमाम उपन्यासकारों में हमें यह प्रवृत्ति मिलती है । सामाजिक कुरीतियों का विरोध , विधवा-विवाह का प्रचार , स्त्री-शिक्षा का प्रचार , हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार , सामाजिक बुराइयों का विरोध जैसे मुद्दे इस समय के रचनाकारों में हमें प्राप्त होते हैं ।

आलोच्य काल में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" के दो उपन्यास मिलते हैं -- "मां" और "भिखारिणी " जिनमें उनका मानवतावादी , आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है । बाबू गुलाबराय के शब्दों में "कौशिक कौशिक जी निम्न कोटि के पात्रों में , जैसे भिखारियों में , मानवता के दर्शन कराने में सिद्धहस्त थे । "भिखारिणी " में जस्सो जैसी निम्न कोटि की स्त्री में ऊँचे मानवीय आदर्शों की स्थापना करके वे मानो सिद्ध करते हैं कि भावों की उच्चता पर केवल अभिजातवर्ग का ही एकमात्र अधिकार नहीं है । "मां" में दो माताओं [सुलोचना तथा सावित्री] द्वारा अपने-अपने पुत्रों पर पड़े हुए प्रभावों की तुलना है । " [43]

पं. बेचन शर्मा "उग्र" का जीवन सदा घुमक्कड़ प्रकार का रहा है । नौटंकी , नाटक-कंपनी , फिल्म-कंपनी , साहित्य-सम्मेलन , पत्रकार-जगत और जेल तक उनके अनुभवों का संसार रहा है । उनका जीवन सदा उबड़-खाबड़ भूमियों पर चलता रहा । उनके लेखन में एक प्रकार का विद्रोही स्वर भी मिलता है और उनकी व्यंग्य-शैली की छटा तो देखते ही बनती है । जीवन की इस गतिशीलता और अनुभवों की व्यापकता के साथ अपने सर्जनात्मक व्यक्तित्व में यदि वे सामंजस्य स्थापित कर पाते तो वे एक सफल रचनाकार हो सकते थे । "परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा को जुटाने का कोई प्रयत्न नहीं किया और वे एक अलीक व्यक्तित्व बनकर रह गए ।" [44]

"घण्टा" , "चन्द हसीनों के खुतूत" , "दिल्ली का दलाल" , "बुधुआ की बेटी" , "शराबी" आदि उनके उपन्यास आलोच्य सीमा के अन्तर्गत आते हैं । "घंटा" एक प्रयोगवादी उपन्यास है । उसका नायक ही

मंदिर का एक घण्टा है । वह मंदिर में आने वाले बगुला-भगतों तथा पोंगा-पंडितों का , उनके कुकर्मों का पर्दाफाश करता है । "चन्द हसीनों के खुतूत" का महत्त्व उसके नवीन शिल्प के कारण बढ़ जाता है । पत्रात्मक शैली में लिखा गया हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है । एक दूसरी दृष्टि से भी यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण है । इसमें लेखक ने नर्गिस और मोरारीकृष्ण नामक दो अन्तर्धर्मीय व्यक्तियों के प्रेम का चित्रण किया है । "दल्ली का दलाल" उपन्यास में लेखक ने स्त्रियों के अवैध व्यापार के रैकेट को बेपर्द किया है । "शराबी" में शराब के व्यसन के दुष्परिणामों को उद्घाटित किया है । "बुधुआ की बेटी" इन सभी उपन्यासों में कुछ अलग पड़ता है । इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की काफी संभावनाएं हैं । जब हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैसी कोई चीज नहीं थी तब यह उपन्यास आता है जिसका वस्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के करीब पड़ता है । इसकी नायिका रधिया भंगी जाति की है । वह अतीव सुंदरी थी । घनश्याम नामक एक युवक उसके भोलेपन का लाभ लेकर उससे शारीरिक संपर्क स्थापित करता है और उसके कौमार्य को भंग करता है । अपनी स्वार्थपूर्ति के बाद वह उसे छोड़ देता है । इस प्रकार घनश्याम द्वारा प्रवंचित होने पर उसकी प्रतिक्रिया के रूप में वह समग्र पुरुष-जाति को अपना शत्रु मान लेती है । अतः उनसे प्रतिशोध लेने के लिए उनको अपने सौन्दर्य-जाल में फंसाकर पागल और बर्बाद कर देती हैं । यही उपन्यास बाद में सन् 1955 में "मनुष्यानंद" नाम से भी प्रकाशित हुआ था ।

वैसे हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उल्लेख एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में किया जाता रहा है , तथापि प्रस्तुत काल-खण्ड में प्रेमचन्द के लेखकीय व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव है कि उन्होंने भी समाज की कतिपय समस्याओं को लेकर सामाजिक उपन्यासों की रचना की है । आलोच्य काल में उनके "हृदय की परख" , "खवास का ब्याह" , "व्यभिचार" , "हृदय की प्यास" , "अमर अभिलाषा" आदि उपन्यास उपलब्ध होते हैं जिनमें "खवास का ब्याह" पृथ्वीराजरासो में संकलित एक कथा के आधार पर है । शेष सभी उपन्यास नारी-जीवन के विभिन्न पक्षों तथा आदर्शों को लेकर लिखे गये हैं ।[45]

गोविंदवल्लभ पंत मूलतः नाटककार हैं, किन्तु उन्होंने कुछ उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें "प्रतिमा" और "मदारी" नामक दो उपन्यास आलोच्य काल की सीमा में आते हैं। "प्रतिमा" में नारी जीवन की समस्याओं का समुचित ढंग से आकलन हुआ है। "मदारी" में पहाड़ी जीवन के परिवेश को लिया गया है। प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता इसमें है कि नगाधिराज हिमालय की नैसर्गिक शोभा-सुषमा का बड़ा ही मनोहारी चित्रण इसमें समुपलब्ध होता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की भांति वृन्दावनलाल वर्मा भी ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में ख्यात हैं। डा. भारतभूषण अग्रवाल ने उनके संबंध में लिखा है -- "जिस प्रकार प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यासों को गंभीर स्तर पर पहुँचाया उसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा ने पहली बार ऐतिहासिक उपन्यास को गरिमा प्रदान की।"[46] परन्तु प्रेमचन्द-युग में वर्माजी भी उनके प्रभा-मंडल में आकर कुछ सामाजिक उपन्यासों की सृष्टि करते हैं, जिनमें "लगन", "कुंडलीचक्र", "प्रेम की भेंट", "प्रत्याघात" प्रभृति मुख्य हैं। वैसे इस काल-खण्ड में वे दो ऐतिहासिक उपन्यास भी देते हैं -- "गढ़ कुण्डार" और "विराटा की पद्मिनी"। ऐतिहासिक उपन्यासों को लिखने के पीछे उनकी जो दृष्टि है वह है इतिहास के पुनर्मूल्यांकन की। वे भारत के इतिहास में कुछ संशोधन चाहते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है --- "पहले इतिहास लिखने का विचार था, परन्तु किस्से-कहानियां, वीर-गाथाएं सुनने का छुटपन से व्यसन था और फिर मिल गये वाल्टर स्कोट पढ़ने को तो मैंने अपनी बात कहने का माध्यम उपन्यास चुना।"[47]

हमारे राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज-बंधु सियारामशरण गुप्त भी आलोच्य काल के एक प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं और अपने उपन्यासों में नारी-विषयक समस्याओं को निरूपित करते रहे हैं। विवेच्य काल में उनके दो उपन्यास प्राप्त होते हैं -- "गोद" और "अंतिम आकांक्षा"। "गोद" में गुप्तजी का उदारतावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है और किशोरी की निर्दोषता प्रमाणित हो जाने पर उसे स्वीकार कर लेता है।

"अंतिम आकांक्षा" आत्मकथनात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें रामलाल नामक एक नौकर को उपन्यास का नायक बनाया गया है । इसमें छुआछूत की समस्या को उठाया गया है तथा धार्मिक संकुचितता का भी अच्छा-खासा मखौल उड़ाया है ।

जयशंकर प्रसाद मूलतः कवि और नाटककार हैं, परन्तु आलोच्य काल में उनके दो उपन्यास मिलते हैं -- "कंकाल" और "तितली" । इनमें यथार्थवादी कला की दृष्टि से "कंकाल" का महत्व असंदिग्ध है ।

वस्तुतः प्रेमचन्दजी ने एक बार प्रसादजी पर यह टिप्पणी की थी कि वे तो गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं । "कंकाल" उपन्यास मानो उसका प्रत्युत्तर है जिसमें प्रसादजी ने अभिजात-वर्ग की बखिया उधेड़कर रख दी है । अभिजात-वर्ग की वर्णसंकरीय सृष्टि का इससे बेहतर चित्रण शायद ही कहीं मिले । हाँ, एक उपन्यास है सेम्युअल रिचार्डसन का "पामेला" (1740) , ज्योर्ज सेहण्ट्सबरी ने उसकी भूमिका में तत्कालीन अंग्रेज समाज की निकृष्ठ छबि का परिचय कराया है । रिचार्डसन तो बढ़ई का पुत्र था । भद्र वर्ग का उसे खास परिचय भी नहीं था, तथापि उस वर्ग का चित्रण इतना बखूबी हुआ है कि पढ़ें तो कहीं भी उधार-अनुभूति का अहसास नहीं होता । वह समाज नितान्त भ्रष्टाचारी था ।[48] प्रसादजी का यह उपन्यास भी कुछ ऐसा ही है । जब प्रेमचन्दजी ने इस उपन्यास को पढ़ा तो वे बेहद खुश हुए और लिखा -- " यह प्रसादजी का पहला ही उपन्यास है, पर आज हिन्दी में बहुत कम ऐसे उपन्यास हैं जिन्हें इसके सामने रखे जा सकते हैं । "[49] कुछ लोग "कंकाल" को प्रकृतिवादी उपन्यास मानते हैं ,परन्तु वस्तुतः वह यथार्थवादी समस्यामूलक उपन्यास है जिसमें केवल समस्याओं को उठाया गया है । कला की दृष्टि से इसे उच्च कोटि का मानदण्ड माना गया है, जबकि कलाकार अपने उद्देश्य को अधिकाधिक गुप्त और अप्रत्यक्ष रखता है । परन्तु "तितली" में प्रसादजी यथार्थवाद को छेंकते हुए पुनः आदर्शवादी रोमेण्टिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं, अतः उसमें चित्रित ग्रामीण समाज का चित्र यथार्थ नहीं लगता ।

प्रेमचन्दयुग के अन्य उपन्यासकारों में प्रतापनारायण श्रीवास्तव का नाम भी उल्लेखनीय समझा जायेगा । उनके अधिकांश उपन्यास तो प्रेम-चन्दोत्तर काल में आते हैं , परन्तु आलोच्य काल की सीमा के अन्तर्गत उनका एक उपन्यास मिलता है -- "विदा" §1927§ । "विदा" में शिक्षित मध्यवर्ग के विदेशी अनुकरण पर व्यंग्य किया गया है । प्रतापनारायणजी की भाँति राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह श्री का भी "तरंग" उपन्यास आत्म-कथनात्मक शैली में मिलता है । प्रेमचन्द के "सेवासदन" उपन्यास के प्रभाव-स्वरूप कई उपन्यास मिलते हैं जिनमें वेश्या-समस्या पर प्रकाश डाला गया है । ऐसे उपन्यासों में राजेश्वरप्रसाद कृत "मंच" §1928§ , धनीराम"प्रेम" कृत "वेश्या का हृदय " §1932§ तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" कृत "अप्सरा" §1931§ आदि प्रमुख हैं । श्रीनाथसिंह कृत "क्षमा" §1925§ तथा प्रफुल्लचन्द्र ओझा कृत "तलाक" §1932§ अनमेल ब्याह की समस्या पर आधा-रित उपन्यास हैं ।

प्रेमचन्द काल में कुछ लेखिकाओं का कतृत्व भी उल्लेखनीय रूप से सामने आता है , जिनमें शिवरानीदेवी , उषादेवी मित्रा , तेजोरानी दीक्षित जैसी महिला उपन्यासकार प्रमुख हैं । शिवरानीदेवी द्वारा प्रणीत "नारी-हृदय" §1932§ , उषादेवी मित्रा कृत "वचन का मोल" §1936§ तथा तेजोरानी दीक्षित कृत "हृदय का कांटा " नारी-आदर्शों तथा नारी-समस्याओं पर आधारित उपन्यास हैं ।

चन्द्रशेखर शास्त्री का उपन्यास "विधवा के पत्र" विधवा-समस्या पर आधारित उपन्यास है । अभी हाल ही में एक विदेशी विद्वान डा. जीन ड्रेज़ जो लण्डन स्कूल आफ इकोनोमिक्स में प्रोफेसर हैं ने भारतीय विधवा-जीवन पर सर्वेक्षण किया था । सर्वप्रथम तो हमारे देश में विधवाओं की संख्या का अंक ही बड़ा हैरतअंगेज़ है । इस समय देश में कुल 3 करोड़ 30 लाख जितनी विधवाएं हैं जो देश की कुल स्त्री-संख्या के 8 प्रतिशत होती है । विधवाओं का मृत्यु दर भी 85 प्रतिशत अधिक मिला है । पुत्रियों के की सहायता पर निर्भर विधवाओं का प्रतिशत 16 जितना है , जिसमें 11 प्रतिशत विधवाएं तो अपनी पुत्रियों के साथ ही रहती हैं ।[50] संक्षेप में आज भी भारत में

विधवाओं की स्थिति कुछ ज्यादा अच्छी नहीं है । अतः चन्द्रशेखर शास्त्री के इस उपन्यास का महत्त्व आज भी अपरिहार्य है । गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत "गंगा-जमनी" में तथाकथित उच्चवर्गीय जीवन की नग्नता का चित्रण उपलब्ध होता है ।

प्रेमचन्दकाल में ही प्रेमचन्दोत्तर काल की एक प्रमुख प्रवृत्ति -- व्यक्तिवादी चेतना -- का उदय होने लगा था । इलाचन्द्र जोशी , भगवतीचरण वर्मा , जैनेन्द्रकुमार आदि इस व्यक्तिवादी -- मनोविश्लेषणवादी चिंतन के वाहक होते हैं ; परन्तु इन तीनों का साहित्यिक कतृत्व तो प्रेमचन्दोत्तर काल में ही विकसित हुआ है । इन तीनों का अध्ययन-क्षेत्र भी विस्तृत है तथा फ्रायड , एडलर , युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों के मनोविश्लेषण से सम्बद्ध सिद्धान्तों से भी वे अवगत हो चुके थे । डा. भारतभूषण अग्रवाल ने इस ओर संकेत हुए लिखा है -- " वे जान चुके हैं कि सारी समस्याएँ सामाजिक या आर्थिक ही नहीं है , उनका संबंध संस्कार , परिवेश और मनोजगत से भी है । " 51

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास सामाजिक , समस्याप्रधान , बाह्य स्थूल घटनायुक्त , वर्णनात्मक शैली से युक्त तथा मानवतावादी-आदर्शवादी दृष्टि से संपन्न मिलते हैं । प्रेमचन्दजी जहां सामाजिक यथार्थ की समग्रता को लेकर चलते हैं , वहां इसी काल-खण्ड में उग्र , ऋषभचरण जैन , चतुरसेन शास्त्री प्रभृति उपन्यासकार केवल आलोचनात्मक दृष्टिकोण को लेकर चले हैं । अतः उनके उपन्यासों में समाज के नग्न चित्रण की प्रवृत्ति अधिक मिलती है ।

तत्कालीन समसामयिकता :

प्रत्येक लेखक अपने समय की नीपज होता है । उपन्यास का संबंध वास्तव से होने के कारण तत्कालीन सामयिकता का प्रभाव उसमें और भी गहराई से लक्षित होता है । साहित्य में कुछ शाश्वत मानवीय मूल्यों एवं सत्यों का आकलन अवश्य होता है , परन्तु उनकी अभिव्यक्ति

हेतु जो ढांचा तैयार होता है उसमें किसी समय या कालखण्ड की विशिष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य होता है । अतः आलोच्य उपन्यासकार ऋषभचरण जैन के औपन्यासिक मूल्यांकन के लिए तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक , सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी देखना-परखना पड़ेगा । बिना उसके यथार्थ परिवेश की पड़ताल के उन उपन्यासों का विषय-वस्तु स्पष्ट नहीं हो पायेगा ।

आलोच्य समयसीमा में आर्यसमाज , प्रार्थनासमाज , ब्रह्मोसमाज जैसे सुधारक आंदोलन मिलते हैं । इन धार्मिक-सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के कारण परंपरागत रूढ़िग्रस्तता तथा धार्मिक व सामाजिक अंध-मान्यताओं पर करारे प्रहार होते हैं । इसके कारण भारतीय चिंतन एवं सोच में भी गुणात्मक परिवर्तन आता है । जातिप्रथा , मूर्तिपूजा तथा बाह्य धार्मिक अनुष्ठानों पर लोग व्यंग्य दृष्टि से देखने लगते हैं और अंध-विश्वासों का कुहासा कुछ छंटने लगता है । राष्ट्रीयता , स्वभाषा के प्रति लगाव , स्त्री-शिक्षा , दहेजप्रथा का विरोध , विधवा-विवाह का समर्थन , बाल-विवाह का विरोध , अनमेल विवाह का विरोध जैसी प्रवृत्तियां उक्त आंदोलनों के फलस्वरूप विकसित होती हैं ।

प्रायः यही समय है जब भारत में राजनीतिक चेतना करवट लेने लगती है । सन 1885 में सर ए.ओ. ह्यूम तथा व्योमेशचन्द्र बेनरजी के प्रयत्नों से हिन्दू महासभा (वर्तमान कांग्रेस) की स्थापना हुई थी । प्रारंभ में तो इसका कार्य सरकार बहादुर को निवेदन देने तक सीमित था , परन्तु बादमें क्रमशः क्षीप्र एवं तीव्र होती गई । गोपालकृष्ण गोखले , दादाभाई नवरोजी , लोकमान्य तिलक , सर सैयद अहमद , मोतीलाल नेहरू , मोहम्मद अली जिन्ना , डा. अबुल कलाम आजाद , वल्लभभाई पटेल , पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं के कारण राजनीतिक गहमागहमी काफी बढ़ गई थी । उसमें मोहनदास करमचन्द गांधी के प्रवेश से उस राजनीतिक चेतना में अनेक आयाम जुड़ने लगते हैं । गांधीजी पूर्ण स्वराज्य की कल्पना को लेकर चलते हैं जिसमें केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही निहित नहीं थी । वे भारत

को आर्थिक , सामाजिक , सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से स्वतंत्र करना चाहते थे ; अतः विदेशी शासन से मुक्ति की उनकी मुहिम में ग्रामोद्योग , ग्रामोद्धार, स्वदेशी का आग्रह , विदेशी चीज-वस्तुओं का बहिष्कार , अस्पृश्यता-निवारण , स्त्री-शिक्षा जैसी अनेकानेक बातों को वे अपने कार्यक्रम में जोड़ते हैं । उनके पहले काँग्रेस चन्द पढ़े-लिखे लोग तथा एक विशिष्ट वर्ग का समुदाय मात्र थी , पर गांधीजी ने उसे राष्ट्रीय चेतना का पर्याय बना दिया ।

भारतीय राजनीति में गांधीजी का प्रवेश इस काल की एक विशिष्ट घटना है । अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा वे दक्षिण अफ्रिका में सफलता प्राप्त कर चुके थे । आलोच्य लेखक का एक उपन्यास "सत्याग्रह" गांधीजी के इसी अफ्रिका सत्याग्रह के वस्तु पर आधारित है । सन् 1915 में वे भारत आये और गोखले की सलाह से भारत-भ्रमण के पश्चात् अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे उन्होंने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की । सन् 1920 में लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात् काँग्रेस की बागडोर उनके हाथों में आ गई । महात्मा गांधी के काँग्रेस में आ जाने से उसमें एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया । " पहली बार देश का दिमाग (शिक्षित-वर्ग) और दिल (विराट जनता) जुड़पाया । उन्होंने काँग्रेस को एक विस्तृत धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया । स्वाधीनता के साथ ग्रामसुधार , ग्रामोद्योगों का पुनरुद्धार , स्वदेशी का प्रचार , खादी , हिन्दू-मुस्लिम एकता , अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा , राष्ट्रीय शिक्षा आदि भारतीय जीवन के प्राणप्रश्नों की प्रतिष्ठा द्वारा समूचे देश में एक नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ ।" [52]

गांधीजी ने देश को सत्य और अहिंसा के हथियार दिये । असहयोग और सत्याग्रह के आंदोलनों ने देश के सामाजिक-राजनीतिक वातावरण को ही बदल डाला । सन् 1928 में सरदार पटेल का बारडोली सत्याग्रह सफलतापूर्वक संपन्न हुआ । उसी वर्ष सायमन कमीशन आया , जिसका लोगों ने डटकर विरोध किया । सन् 1929 में लाहोर काँग्रेस अधिवेशन के दरमियान युवक सम्राट पं. जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य का नारा बुलंद किया । सन् 1930 में महात्मा गांधी ने दांडीकूच करके नमक के कानून

का भंग किया । इसके द्वारा उन्होंने साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी अंग्रेज सत्ता को जनता की शक्ति का परिचय करवाया । इसी समय सुभाषचन्द्र बोस , सरदार वल्लभभाई पटेल , मोतीलाल नेहरू , पं. जवाहरलाल नेहरू , अब्बासअली तैयबजी , बाबू राजेन्द्रप्रसाद , सरोजिनी नायडू , डा. अन्सारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद , डा. बाबासाहब भीमराव आंबेडकर जैसे नेता भारतीय राजनीति के मंच पर आये जिनके कारण पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीयता की एक लहर-सी दौड़ गई । संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजनीतिक सरगर्मियों के कारण ~~पेरे देश~~ पूरे देश में इस समय एक नयी चेतना दृष्टिगत होती है ।

नगरीकरण की प्रक्रिया :

जिस समय सामाजिक , राजनीतिक , धार्मिक आदि दृष्टियों से भारतीय जन-जीवन में एक बदलाव आ रहा था ; उसी समय नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण भी समाज में नये परिवर्तन आ रहे थे । इस नगरीय प्रक्रिया के कारण मानव-संबंधों में भी एक विचित्र ~~प्रकार~~ प्रकार की जटिलता का समावेश हो रहा था । भारत में यह नगरीकरण की प्रक्रिया 19 वीं शताब्दी के अन्त भाग से शुरू हो गई थी । सन् 1901 में नगरीय क्षेत्र में जनसंख्या का प्रतिशत 10.84 था जो 1951 तक बढ़ते-बढ़ते 17.29 हो गया था ।[53] एक गणना के अनुसार सन् 1951 में भारत में नगरों की कुल संख्या 2923 तक पहुँच गई थी ।[54]

इस बढ़ते हुए नगरीकरण ने हमारे समाज में अनेक सामाजिक, आर्थिक , सांस्कृतिक एवं प्रशासकीय समस्याओं को जन्म दिया है । शहरों की बढ़ती हुई जन-संख्या ने स्वास्थ्य एवं गंदी बस्तियों की समस्याओं को पैदा किया है । इसके कारण प्राचीन जीवन-मूल्यों के टूटने से समाज-जीवन में अनेक प्रकार की अनैतिकताओं का प्रवेश शुरू हुआ । नगरीकरण के इन प्रभावों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत संक्षेप में विश्लेषित कर सकते हैं — /1/पारिवारिक समस्याएं एवं नगरीकरण , /2/ स्वास्थ्य एवं नगरीकरण ,

/3/ जातिप्रथा एवं नगरीकरण , /4/ अपराध एवं नगरीकरण , /5/ व्यक्तिवाद एवं नगरीकरण , /6/ निवास समस्या , /7/ कृत्रिम जीवन तथा /8/ नगरीकरण के अन्य प्रभाव ।

/1/ पारिवारिक समस्याएं एवं नगरीकरण : हमारे ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार का एक विशेष स्थान रहा है । वहां विवाह एक धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार माना जाता है । अतः लड़की के चुनाव में माता-पिता तथा अन्य रिश्तेदारों का भी समावेश होता था । परन्तु शहरों में औद्योगीकरण , पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव , श्रम-विभाजन , मकानों की तंगी , व्यक्तिवादी चिंतन आदि के कारण संयुक्त परिवार अब टूट रहे हैं और उसका स्थान विभक्त परिवार ले रहे हैं । पहले व्यक्ति पर परिवार का नियंत्रण था परन्तु अब उस नियंत्रण में शिथिलता का प्रवेश हो रहा है , फलतः व्यक्तिवादी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है । नगरीकरण के कारण पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों में भी बदलाव आया है और उनके बीच का भावजगत विलुप्त-सा हो रहा है । अब ये भावात्मक संबंध अर्थ-आधारित समझौतों में बदल रहे हैं । नारी की सामाजिक स्थिति में भी थोड़ा परिवर्तन आया है । अब वह पुरुष की अनुगामिनी मात्र न रहकर साथी , सहयोगी एवं मित्र समझी जाने लगी है । स्त्री-पुरुष की समानता पर जोर देने के कारण अब वह शिक्षा , राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों से टक्कर लेने लगी है । स्त्री अब घर की चार दीवारों से बाहर आई है और "रसोई की रानी" मात्र नहीं रह गई है । इन कारणों से उसका मानसिक विकास भी हुआ है , परन्तु स्त्री की इस जागृति के कारण पुरुष के अहम् को चोट पहुंचने लगी है और परिणामस्वरूप कहीं-कहीं उनका दाम्पत्य-जीवन खंडित भी होने लगा है । नगरीकरण के प्रभावस्वरूप उत्पन्न भौतिकवादी चिंतन-परंपरा के चलते शनैः शनैः परिवार से वृद्ध लोगों का (बड़े-बूढ़ों का) प्रभाव व सम्मान कम हो रहा है । विवाह अब धार्मिक संस्कार न रहकर सामाजिक समझौतों का रूप धारण कर रहे हैं । फलतः विवाह-विच्छेद की समस्या बढ़ रही है । पुरानी विवाह-प्रथा के स्थान पर प्रेमविवाह , अन्तर्जातीय विवाह , सिविल मैरिज (कोर्ट-मैरिज) आदि के किस्से भी शहरों में बढ़ रहे हैं ।

बालविवाह के स्थान पर वयस्क-विवाह होने लगे हैं, परन्तु कई बार बड़ी उम्र तक विवाह न होने के कारण उनमें अनेक प्रकार की यौन-विकृतियाँ तथा यौन-स्वच्छंदताएं पनप रही हैं। विधवाश्रमों तथा बालिकाश्रमों में नारी के दैहिक-शोषण के नये-नये औजार और नुस्खे तैयार हो रहे हैं। अभी हाल ही में पवित्र-धाम द्वारिका के "सनातन सेवा मंडल" के स्वामी केशवानंद का सेक्स-कौभांड प्रकाश में आया है जिसमें उन्होंने अपने धार्मिक व्यक्तित्व की आड़ में गालिबन दो सौ कुमारिकाओं के चरित्र को भ्रष्ट करने की बात का स्वीकार किया है। विद्यालय की आचार्या तथा आश्रम की गृहमाता भी इस कामलीला में बराबर की हिस्सेदार रही हैं।[55]

/2/ स्वास्थ्य एवं नगरीकरण : नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है। बढ़ते हुए उद्योगों का हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। औद्योगिक कल-कारखाने जल एवं वायु को दूषित करते हैं। कपड़े के कारखानों तथा साबुन के कारखानों में काम करने वालों की आँखें एवं फेफड़ों में रूई के रेशों तथा अन्य अवांछित रसायनों का प्रवेश होता है। अतः उसमें काम करने वाले कारीगरों व मजदूरों को क्षय रोग जैसी बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। कारखानों की गड़गड़ाहट बेहरेपन को आमंत्रित करती है। मनुष्य के रक्तचाप पर भी उसका असर पड़ता है। फलतः खून एवं हृदय की बीमारियाँ बढ़ती हैं। औद्योगिक शहरों की भीड़भाड़, दौड़-धूप, आपाधापी, हाय-चिल्लपों, घोंघाट आदि का मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। "उसकी विरासत" का दिप्पो शहर में जाकर कुछ साल तो खुशहाल रहता है, परन्तु टी.बी. का मरीज होकर जर्जर-शरीर जब वह गांव लौटता है तब लोगबाग उसे पहचानते तक नहीं।[56] मिलों के धुंए से वायु-प्रदूषण बढ़ता है। मशीनों तथा यातायात के साधनों की आवाज़ से ध्वनि-प्रदूषण बढ़ता है तथा रासायणिक कारखानों से निकलने वाले गंदे पानी से जल प्रदूषित होता है। और ये तीनों प्रकार के प्रदूषण मानव-स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। तभी तो कहा गया है -- "शहर की दवा और गांव की हवा बराबर है।" औद्योगिक महानगरों में गन्दी बस्तियाँ सुरसा के मुंह की तरह फैलती जाती हैं।

वहाँ मच्छर -मक्खियों के कारण अनेक रोग फैलते हैं । इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण मनुष्य ग्रामीण जीवन की नैसर्गिकता से दूर होता जा रहा है । इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है ।

/3/ जातिप्रथा एवं नगरीकरण :- नगरीकरण के कारण जातिप्रथा की कठोरता में कुछ शिथिलता आई है । जातिप्रथा को लेकर खानपान , ऊंच-नीच तथा परंपरागत व्यवस्था जैसी कुछ बातें जो ग्रामीण समाज में दृष्टिगत होती थीं वह शहरों में लुप्त हो रही हैं । विवाह आदि में भी जाति का ध्यान तो रखा जाता है , परन्तु वहाँ पर भी पहले वाली कट्टरता के स्थान पर शिथिलता आ रही है और जातिगत फासला यदि ज्यादा न हो तो अन्तर्जातीय विवाहों का भी स्वागत होने लगा है । व्यक्ति यदि अच्छा-खासा कमाता है , यदि उसका जीवन स्तर ऊपर उठा हुआ है , तो कई लोग विवाह आदि में जातिगत विचार को अलग रखने में या अलग करने में हिचकिचाते नहीं है । होटलों , क्लबों , सिनेमा होलों आदि के कारण छुआछूत की भावना भी नष्ट हो रही है ।

/4/ अपराध एवं नगरीकरण : अपराध की समाजशास्त्रीय व्याख्या अति प्राचीन है । समाजशास्त्र की दृष्टि से वे व्यवहार जो समाजविरोधी होते हैं अपराध कहे जाते हैं । इलियट और मैरिल ने अपराध के विषय में कहा है — " क्राईम मे बी डिफाइण्ड एज़ एण्टी-सोसियल बीहेवियर व्हीच द ग्रुप रीजेक्ट्स एण्ड टु व्हीच इट एटेचिज पैनेल्टीज़ . " [57] अर्थात् समाजविरोधी व्यवहार जो कि समूह द्वारा अस्वीकृत होती है और जिसके लिए कोई दण्ड निर्धारित होता है उसे अपराध के रूप में परिभाषित कर सकते हैं । महान समाज-शास्त्री कोर्डविल ने अपराध की परिभाषा देते हुए लिखा है -- " क्राईम इज़ द वायोलेशन आफ द सेट वेल्यूज़ एसेप्टेबल टु ओर्गेनाइज्ड सोसायटी एट ए सर्टन टाईम एण्ड ए गिवन प्लेस . " [58] अर्थात् किसी निश्चित स्थान व समय पर संगठित समाज द्वारा निश्चित जीवन-मूल्यों का उल्लंघन अपराध है । उपर्युक्त परिभाषित अपराध-वृत्ति आदिम-काल से दृष्टिगत हो रही

है , तथापि इधर नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण अपराधीकरण की वृत्ति ने भी जोर पकड़ा है । नगरों में परिवार , धर्म , पड़ौस , रक्त-संबंध एवं जाति-गत नियंत्रण आदि में शिथिलता पाई जाती है । फलतः अपराधों में वृद्धि पाई जाती है । शहर में अपरिचितता की मानसिकता अपराध की पृष्ठभूमि तैयार करती है । शहरों में तो ऐसे गिरोह भी होते हैं जहां अपराधियों को बाकायदा ~~xxx~~ अपराध के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । फलतः चोरी , डकैती , बैंकों को लूटना , हत्या , आत्महत्या , लड़कियों को भगा ले जाना , बच्चों को उठा ले जाना , धोखेबाजी , ठगी , ब्लेक-मेलिंग , धनवान व्यक्तियों के अपहरण और फिरौती , अवांछित व्यक्ति को रास्ते से हटा देने के लिए "सुपारी" का दिया जाना जैसी घटनाएं शहरों में ही अधिक होती है । फिल्मों के बढ़ते प्रचार ने भी अपराधों में वृद्धि का काम किया है । ~~xxx~~भचरण जैन कृत उपन्यास "भाई " का 'कुतुबी' शहर से ही अपराधी-मानस लेकर आता है ।

/5/ <u>व्यक्तिवाद एवं नगरीकरण</u> : नगरों में व्यक्तिवाद की भावना सविशेष देखी जाती है । ~~xxx~~ गाँवों में मुख्य कार्य कृषि का होता है । कृषि में सामूहिक-श्रम की भावना होती है । अकेले व्यक्ति-द्वारा कृषि-कार्य संभव नहीं है । कई लोग मिलकर काम करते हैं । घर-परिवार के सभी लोग उसमें जुट जाते हैं । अतः वहां व्यक्ति का जीवन साझे का जीवन होता है । शहरों में श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण पाया जाता है , जिससे व्यक्तिवादी चिन्तन को बल मिलता है । अतः वहां व्यक्ति दूसरों की उपेक्षा और स्वयं चिन्ता अधिक करता है । व्यक्ति आत्मकेन्द्रित ,अन्तर्मुखी और स्वतंत्र होता है । फलतः शहरी लोगों में शीत-संबंध (कोल्ड-रीलेशनशीप) पाये जाते हैं । वहां प्रायः प्रेम, सौहार्द एवं आत्मीयता का अभाव पाया जाता है । प्राथमिक सम्बन्धों की अपेक्षा द्वितीयक सम्बन्ध (सैकण्डहैण्ड रीलेशनशीप) बढ़ रहे हैं । सामाजिक-विघटन की प्रक्रिया यहां शीघ्रगामी होती है । इन सब कारणों से शहरों में वैयक्तिकरण की प्रक्रिया अधिक तीव्र पायी जाती है । फलतः मानवीय संबंधों की उष्मा विलुप्त हो रही है ।

/6/ निवास-समस्या : शहरों में निवास की समस्या बड़ी विकट होती है । गुजराती में तो कहावत ही है -- " शहर में रोटलो मळे पण ओटलो न मळे । " अर्थात् शहर में एक बार खाना मिल सकता है , पर रहने का स्थान नहीं मिलता है । स्थान-विशेष का अभाव और नगरों की ओर निरंतर बहता जन-प्रवाह इस समस्या को और भी जटिल बना देता है । परिणामस्वरूप शहरों में हवा और रोशनदार मकानों का नितान्त अभाव रहता है । कई लोग सड़क , गटर या गंदे नाले के किनारे झुग्गी-झोंपड़ियों में अपने घर बना लेते हैं । फलतः प्रत्येक शहर में झोंपड़पट्टी या स्लम की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है । बम्बई , कलकत्ता , दिल्ली , कानपुर , मद्रास , अहमदाबाद जैसे औद्योगिक नगरों में निवास की समस्या इतनी विकट है कि कई बार एक-एक कमरे में 15-20 व्यक्ति रहते नज़र आते हैं । कुछ लोग तो वहां किराये की खाट पर रहते हैं । फूटपाथों और गटर के पाईपों में भी लोग रहते हैं । ऐसे स्थानों पर पाखाना एवं पेशाबघरों का अभाव होता है , फलतः गन्दगी बढ़ती ही जाती है । इन कारणों से लोग नाना प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं । स्लम वाले केवल स्लम के स्वास्थ्य को ही प्रभावित नहीं करते , बल्कि उससे समूचे शहर के स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है ।

/7/ कृत्रिम जीवन : शहरी व्यक्ति के जीवन में प्रायः कृत्रिमता दृष्टिगत होती है । यहां के लोगों के पहनावे एवं प्रसाधनों में ही नहीं, प्रत्युत उनके आचरण में भी अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता के दर्शन होते हैं । परस्पर मिलने पर अभिवादन का दिखावा होता है , परन्तु भीतर से उनके मन सदैव भुनभुनाते रहते हैं । व्यक्ति बाहर से संपन्न व सुशील दिखाई देता है , परन्तु वास्तविकता कुछ और होती है । शहरी जीवन के सामाजिक संबंधों में भी भीतर ही भीतर अनेक प्रकार की दरारें होने के कारण उनमें भी एक प्रकार का खोखलापन दृष्टिगत होता है । श्रीलाल शुक्ल ने शहरी आदमी पर टिप्पणी करते हुए बिलकुल सही कहा है -- " शहर का आदमी , सुअर का-सा लेंड , न लीपने के काम आवे न जलाने के । " 59

/8/ नगरीकरण के अन्य प्रभाव : नगरीकरण के अन्य भी कई प्रभाव वा दुष्प्र दुष्प्रभाव पाये जाते हैं , जिन्हें नीचे परिगणित किया गया है -- 1. नगरीकरण के कारण धर्म का (सच्चे धर्म का) प्रभाव दिनों-दिन घट रहा है । ईश्वर पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है । इस नास्तिकता के कारण व्यक्ति की स्वच्छंदी प्रकृति में एक उबाल-सा आ गया है । फलतः अपराध एवं समाज-विरोधी कार्यों में बढ़ोतरी पाई जाती है ।

2. नगरों में भिक्षावृत्ति अधिक है । सड़क के किनारे , मंदिर-मस्जिद या धार्मिक स्थानों के पास रेल्वे-स्टेशन , बस-स्टेण्ड जाहिर सामाजिक स्थानों पर भिखारियों की भीड़ देखी जा सकती है । यह भिक्षावृत्ति शहरों में व्याप्त गरीबी की सूचक हैं । ऋषभचरण जैन की "दान" कहानी में इसी प्रकार के भिखारियों का वर्णन आता है , परन्तु यहां लेखक ने कलात्मक ढंग से यह भी व्यंजित किया है कि शहरों में धर्म और राजनीति के नाम पर एक केसरी-पोश या सफेदपोश भिखवृत्ति भी पनप रही है , बल्कि फल-फूल रही है ।[60]

3. नगरों में मानसिक तनाव एवं संघर्ष अधिक है जिनसे मुक्ति पाने के लिए लोग कई बार नींद की गोलियों का भी प्रयोग करते हैं । आत्मशांति और मानसिक संतुलन प्राप्त करने का यह उपाय वास्तव में बड़ा महंगा पड़ता है । वह व्यक्ति को शनैः शनैः ही मृत्यु के मुख में धकेलता है । आलोच्य लेखक कृत "हिज हाईनेस" की महारानी कई बार इसका प्रयोग करती हैं ।

4. नगरों में वेश्यावृत्ति भी अधिक पाई जाती है , यौन अपराधों की अधिकता एवं नैतिक मूल्यों में गिरावट यह शहरी-जीवन का एक विशिष्ट अभिलक्षण बन गया है । आलोच्य लेखक कृत अनेक उपन्यासों में इसके उदाहरण मिल जाते हैं , जैसे — "चम्पाकली" , "हिज हाईनेस" , "हर हाईनेस " , "तीन इक्के " , "जनानी सवारियां" आदि उपन्यास और "पेइंग-गेस्ट" , "मामू" , "दावत" आदि कहानियां ।

5. नगरों में बढ़ती जन-संख्या ने यातायात , शिक्षा , प्रशासन , स्वास्थ्य एवं जन-सुरक्षा की समस्याओं को बढ़ा दिया है । सभी लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना , यातायात के साधनों को जुटाना , लोगों के जानोमाल की हिफाजत करना , ये सब समस्याएं नगर-प्रशासन के लिए भी सरदर्द होती जा रही हैं । पूर्व-निर्दिष्ट नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण मानव-मन की जटिलता निरंतर बढ़ती जा रही है । मनुष्य स्वार्थी और स्वकेन्द्रित होता जा रहा है । अपराध-बोध के कारण वह भीतर से खोखला होता जा रहा है । यौन-अपराध एवं असामाजिक वृत्तियों से मनुष्य मानव-समाज को कलंकित व गर्हित कर रहा है । मानो मानवता के शरीर पर कुष्ठ रोग निकल आया है । यहां यह ध्यातव्य रहे कि आलोच्य लेखक ने तत्कालीन नगरीय जीवन की इस नग्नता और गंदगी को बेपर्द किया है , अतः इसकी इतनी चर्चा यहां प्रासंगिक ही समझी जायेगी ।

मद्यपान : (आल्कोहोलिजम) : आलोच्य लेखक ने अधिकांशतः नगरीय परिवेश के उपन्यास लिखे हैं और नगरीय परिवेश में मद्यपान प्रायः पाया जाता है । यह मद्यपान त्रिस्तरीय होता है । उच्चवर्ग में विलासिता के कारण , मध्यवर्ग में उच्चवर्ग की देखादेखी और निम्नवर्ग में गरीबी और जहालत के कारण मद्यपान की कुप्रवृत्ति प्रवृत्ति मिलती है । अतः यहां उसकी कुछ चर्चा करने का उपक्रम है ।

सामान्यतौर पर मदिरा का सेवन ही "मद्यपान" कहलाता है , परंतु इलियट एवं मैरिल का मत है कि "थोड़ी मात्रा में और कभी-कभी शराब पीना मद्यपान नहीं कहलाता । उनके अनुसार एक समस्या के रूप में अत्यधिक मात्रा में शराब पीना ही मद्यपान है ।" [61] विश्व-स्वास्थ्य संगठन के अनुसार " मद्यपान नशे की वह स्थिति है जो किसी भी रूप में मादक पदार्थ के निरंतर सेवन से उत्पन्न होती है ; जिससे थोड़ी देर के लिए नशा चढ़ता है या मनुष्य सदा ही नशे में चूर रहता है और जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक है ।" [62]

टेकचन्द दल के अध्ययन के अनुसार " शराब पीने अथवा किसी भी मादक पदार्थ का सेवन करने से उत्पन्न बुरी आदत अथवा बीमारी ही मद्यपान है । यह वह स्थिति है जो मनुष्य की आत्मा , मन और शरीर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करके पतन की ओर ले जाती है । " 63

इन परिभाषाओं से इतना तो स्पष्ट होता है कि "मद्यपान" वह स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति मद्यपान का आदी हो जाता है । वह इस मद्यसेवन के बिना नहीं रह सकता । परिणामस्वरूप वैयक्तिक एवं सामाजिक विघटन पैदा होता है । समाज में अनेक समस्याएं पैदा होती हैं । अन्ततः समाज और व्यक्ति दोनों का पतन होता है ।

यहां प्रश्न यह उठता है कि शराब की बुराइयों प्रति सचेष्ट करने के बावजूद लोग इस प्रवृत्ति की ओर क्यों प्रेरित होते हैं ? इसके कई कारण है । कुछ लोग शराब का सेवन इसके नींद लाने वाले प्रभाव के कारण , दुःखों को को भुला देने एवं सुख की अनुभूति के लिए , मानसिक तनावों से मुक्ति पाने , अपने विचारों की अभिव्यक्ति एवं अरूचिकर वास्तविकताओं से बचने के लिए करते हैं । पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि नगरीय परिवेश में मद्यपान का सेवन त्रिस्तरीय होता है । धनवान लोग अपनी विलासिता की आपूर्ति के लिए इसका सेवन करते हैं । मध्यवर्ग के लोग झूठी शान और दिखावे के लिए तथा कई बार अधिकारियों को पार्टी देकर खुश करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं । वस्तुतः ये पीते कम पिलाते ज्यादा हैं । और यहां मद्यसेवन भी कभी-कभार का होता है । आदत में उसका शुमार नहीं है । निम्नवर्ग के लोग अपने नरक-तुल्य जीवन की विभीषिका भुलाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं । अतः वस्तुतः मद्य का सेवन इस दो वर्ग के लोग ही अधिक करते हैं । धनवान कीमती और विदेशी शराब पीते हैं । गरीब हल्की , देशी , ठर्रा-टाईप शराब पीते हैं । कई बार व्यापार में दिवाला निकल जाने पर या आर्थिक संकट के समय भी व्यक्ति शराब का सहारा लेता है । प्रेम में असफलता या बेवफाई भी मद्यपान का एक कारक है जिसका प्रचार फिल्मवालों ने सबसे ज्यादा किया है ।

डा. बोन्गर का मत है कि व्यक्ति आपत्तियों एवं चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए शराब का प्रयोग करता है । जब व्यक्ति पर अनेक कठिनाइयां आती हैं और वह अपने को चारों तरफ से घिरा हुआ महसूस करता है तो कुछ समय अपने मन को भुलावे में डालने के लिए वह शराब पीने लगता है । इसीलिए ही शराब को संकट का पेय भी कहा गया है ।[64]

औद्योगीकरण के कारण भी शराबनोशी की वृत्ति को बढ़ावा मिला है । मशीन पर काम करते-करते व्यक्ति थक जाता है , तो अपनी थकान से मुक्ति पाने के लिए तथा नई स्फूर्ति को अर्जित करने के लिए वह मद्यपान का सहारा लेता है । दूसरी तरफ व्यापारी-वर्ग अपने मानसिक तनावों की मुक्ति के लिए उसका प्रयोग करता है । व्यापार में सौदा तय करने के लिए , कोटा और लायसेन्स पाने के लिए , सरकार की विविध व्यावसायिक योजनाओं से लाभान्वित होने के लिए भी मद्यपान का एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है । कई बार बड़े-बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के मैनेजरों , डायरेक्टरों , एम.डी. , मेम्बर , आदि के द्वारा सरकार के ऊँचे ओहदों पर स्थित अफसरों की पंचतारक होटलों में दावत होती है , जिसमें शराब का खुलकर प्रयोग होता है ।

गंदी बस्तियां तथा मनोरंजन के उचित साधनों के अभाव में भी मद्यपान की प्रवृत्ति बढ़ती है । कभी-कभी शराब , व्यावसायिक या घरेलू झगड़ों तथा व्यक्तिगत असफलताओं और निराशाओं के झटके को झेलने का कार्य करती है । शराब पीने पर व्यक्ति को धनवान होने का या दिलदार होने का भ्रम होता है और थोड़े समय के लिए वह अपने को राजा-महाराजा या बादशाह समझने लगता है । कदाचित् इसीलिए किंचित् व्यंग्य भाषा में शराब पीने को "राजा-पाट में आना " कहते हैं । सेम्युअल स्माइल्स तथा लेड़ी बैल ने इंग्लेंड में शराब और गन्दी बस्ती के सहसंबंध पर अध्ययन किया है । उनके अध्ययन का यही निष्कर्ष है कि गन्दी बस्तियों में अनुचित निवास के कारण लोग शराब का अधिक उपयोग करते थे ताकि अपने दुखपूर्ण निवास की वास्तविकता को वे भूल सके । मनोरंजन के अन्य

सस्ते और उपयुक्त साधनों के अभाव में "बोटल " ही व्यक्ति को मनोरंजन प्रदान करती है ।[65]

शराबनोशी के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी होते हैं । मानसिक परिस्थितियां जैसे तनाव , संघर्ष , असुरक्षा का भाव , हीनता की भावना , आत्मकेन्द्रितता , कार्य से पलायन की वृत्ति आदि से भी शराबनोशी में वृद्धि होती है । हर्टन ने अनेक जनजातियों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष दिया है कि जिस संस्कृति में असुरक्षा और तनाव की मात्रा जितनी अधिक होती है , वहां मादक द्रव्यों का उपयोग भी उतना ही अधिक होता है । वर्तमान समय में नगरों के युवकों में तनावपूर्ण स्थिति अधिक पाई जाती है , अतः इस तनाव से मुक्ति पाने के लिए लोग शराब का प्रयोग करते हैं । स्ट्रेकर का मत है कि व्यक्ति शराब पीकर हीनता और असुरक्षा से स्वयं को मुक्त समझने लगता है । असामान्य मानसिक स्थिति एवं मानसिक अपरिपक्वता भी शराब पीने के लिए उत्तरदायी है । इलियट एवं मैरिल का कहना है कि वे लोग जो बहुत संकोची , भावुक , सामाजिक दृष्टि से असुरक्षित तथा कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होते हैं , मद्यपान को एक विकल्प के रूप में स्वीकार करते हैं ।[66]

मनोवैज्ञानिक कारकों के उपरांत कुछ अन्य कारक भी होते हैं । अश्लील साहित्य , सिनेमा , फिल्मी एवं सस्ती व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाएं , यौन-स्वच्छंदता प्रभृति के कारण भी शराब-वृत्ति को बढ़ावा मिलता है । चुनाव के अवसर पर मत प्राप्त करने के लिए राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों द्वारा खूब शराब बांटी जाती है । शराब एक उत्तेजक पदार्थ है , अतः सेना में सैनिकों को शराब पिलाई जाती है ताकि वे दुश्मन का डटकर मुकाबला कर सके । सैनिकों को बर्फीले प्रदेशों पहाड़ों एवं जंगलों में लड़ाई के दौरान जूझना पड़ता है । अतः युद्ध की उत्तेजना प्राप्त करने के लिए वे शराब का प्रयोग करते हैं । एकाकीपन (लोन्लीनेस) भी इसके अनेक कारणों में से एक हैं । कई बार व्यक्ति को

अपने व्यवसाय के कारण घर से दूर अनजाने स्थानों पर अजनबी लोगों के बीच रहना पड़ता है , तब एकाकीपन को मिटाने के लिए लोग प्रायः इसका सेवन करते हैं जिसमें व्यापारी , एजण्ट एवं दलाल इत्यादि आते हैं ।

वेश्यावृत्ति (प्रोस्टिट्यूशन) : वेश्यावृत्ति एक सामाजिक बुराई के रूप में प्राचीन काल से प्रचलित रही है । समाज-शास्त्रीय विश्वकोश के अनुसार " वेश्यावृत्ति विश्व का सबसे पुराना व्यव-साय है और यह तभी से चला आ रहा है जबसे कि समाज के लोगों की काम-भावनाओं को विवाह और परिवार में सीमित किया गया है । भारत में ही नहीं वरन् यूनान व जापान में भी "हीटरी" और "गिशा" के रूप में वेश्यावृत्ति का प्रचलन रहा है ।"[67]

इस वेश्यावृत्ति को परिभाषित करते हुए इलियट तथा मैरिल लिखते हैं -- " वेश्यावृत्ति एक भेदरहित और धन के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन-सम्बन्ध है जिसमें भावात्मक उदासीनता होती है ।"[68] (प्रोस्टि-ट्यूशन इज़ एन इलिसिट सेक्स-यूनियन ओन ए प्रोमिसक्युअस एण्ड मर्सीनरी बेजिज विथ एकंपनिंग इमोशनल इनडिफरन्सलिस .)[68]

एक अन्य कामशास्त्री डा. हेवलोक एलिस इस संदर्भ में कहते हैं -- " प्रोस्टिट्यूट इज़ वन हू ओपनली अबण्डन्स हर बोडी टू ए नम्बर आफ मेन विथाउट चोइस फोर मनी . "[69] अर्थात् वेश्या वह है जो अपने शरीर को बिना किसी विकल्प के पैसों के लिए कई लोगों को मुक्त रूप से उपलब्ध कराती है ।

बोन्गर इस विषय पर लिखते हैं -- " धोज विमेन आर प्रोस्टिट्यूट्स हू सेल धेर बोडिज़ फार द एक्सरसाइज़ आफ सेक्सुअल एक्ट्स एण्ड मेक ओफ धिस ए प्रोफेशन . "[70] अर्थात् वे स्त्रियां वेश्याएं हैं जो अपने शरीर को यौन-क्रियाओं के लिए बेचती हैं और इसे एक व्यवसाय बना लेती हैं ।

सामाजिक तथा नैतिक स्वास्थ्य सलाहकार समिति के अनुसार वेश्यावृत्ति के प्रमुख तीन आधार हैं -- /1/ धन से संभोग का विनिमय ,

/1/ यौन-स्वच्छंदता और /3/ भावनात्मक उदासीनता ।[71]

उपर्युक्त परिभाषाओं से इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि वेश्यावृत्ति वह अवैध यौन-संबंध है जिसका प्रयोग कोई भी स्त्री विवशता की अवस्था में अपनी आजीविका कमाने के लिए स्थापित करती है । इसमें किसी प्रकार का भावनात्मक लगाव नहीं होता । वस्तुतः यह तन का सौदा है , मन का व्यापार नहीं ।

वेश्यवृत्ति पर यह चर्चा यहां इसलिए प्रासंगिक है कि ऋषभचरण जैन के अनेक उपन्यासों तथा कहानियों में इसका चित्रण दृष्टिगत होता है । "चम्पाकली नामक उपन्यास में एक पात्र वेश्या के संबंध में कहता है -- " जो दुनिया भर को बनाये , लेकिन सारी दुनिया मिलकर भी जिसे न बना सके । तवायफ वह परिन्दा है , जो कभी किसीके फंदे में नहीं फंसती और जिस पर दुनिया के पागल लोग अन्धे पतिंगों की तरह खिंचकर गिरते और जलते हैं । "[72]

वेश्याओं की भी अनेक कोटियां निधारित की गई हैं , यथा -- /1/ प्रकट समूह , /2/ अप्रकट समूह , /3/ काल-गर्ल्स , /4/ होटल वेश्याएं , /5/ रखैल वेश्याएं , /6/ वंशानुगत वेश्याएं , /7/ परिस्थितिजन्य वेश्याएं , /8/ अपराधी एवं पिछड़ी जातियों व जन-जातियों की वेश्याएं , /9/ वासनापीड़ित वेश्याएं , /10/ धार्मिक वेश्याएं ।

/1/ प्रकट समूह : प्रकट वेश्याएं उनको कहा जाता है जिनके नाम सरकारी दफ्तरों में वेश्याओं के रूप में रजिस्टर्ड होते हैं । जिन प्रदेशों व शहरों में वेश्यावृत्ति को विधिवत् प्रश्रय मिला हुआ होता है , वहां ऐसे प्रकट समूह मिलते हैं । ये वेश्याएं नगरों में जिन क्षेत्रों में रहती हैं उन्हें " लाल रोशनी क्षेत्र " {रेड लाईट एरिया} कहते हैं । इन वेश्याओं के कोठे बने हुए होते हैं , जिन पर युवा , वृद्ध , स्वस्थ , अस्वस्थ , गरीब , अमीर सभी प्रकार के लोगों की यौन-संतुष्टि होती है । हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली " उपन्यास में पटना के निकट स्थित ऐसे एक क्षेत्र का जिक्र आता है । आलोच्य लेखक कृत "जनानी सवारियां" का

रामजीलाल ऐसे अनेक कोठों का मालिक है ।

/2/ अप्रकट समूह : इनमें वे वेश्याएं आती हैं जो चोरी-छिपे वेश्यावृत्ति करती हैं । ऐसी स्त्रियां वेश्यावृत्ति के साथ-साथ अन्य व्यवसाय भी करती हैं , क्योंकि केवल एक ही व्यवसाय में से प्राप्त होने वाली आय {कमाई} अपर्याप्त होती है । रेणु के उपन्यास "मैला आंचल" में ऐसी कई स्त्रियों के संकेत मिलते हैं ।

/3/ काल-गर्ल्स : इस प्रकार की वेश्याएं शराब घरों ,होटलों , कैबरे स्थलों , नाचघरों , क्लबों तथा कैसिनो में पाई जाती हैं । इन्हें पहचानना सरल नहीं होता । बड़े-बड़े शहरों में कुछ उच्च घरों की लड़कियां और विवाहित महिलाएं भी , इस कार्य में पाई जाती हैं । होटलों के मालिक , टेक्सी-ड्राईवर , कैबरे नृत्य के संयोजक एवं अन्य दलाल अपना कमिशन लेकर इस कार्य में अपना सहयोग देते हैं । आलोच्य लेखक कृत "मयखाना" , " हिज हाईनेस " तथा "जवानी सवारियों में ऐसी अनेक काल-गर्ल्स का वर्णन मिलता है ।

/4/ होटल वेश्याएं : बड़े नगरों में कई लड़कियां तीन तारक या पंचतारक या विशेष सुविधाजनक होटलों में वेश्यावृत्ति करती हैं । सामान्य वेश्याओं की अपेक्षा उन्हें अच्छी-खासी रकम एक रात में मिल जाती है । अतः कई बार अच्छे संपन्न अभिजात वर्ग की लड़कियां और महिलाएं भी इसमें पाई जाती हैं । "छाया मत छूना मन " {हिमांशु जोशी} की कंचन "प्रश्न और मरीचिका " {भगवतीचरण वर्मा } की रूपा आण्टी { जो बादमें सांसद तक बन जाती है } जैसी महिलाएं इसमें आती हैं । आलोच्य लेखक के उपन्यास " हिज हाईनेस " में महाराजा जिस फिल्म अभिनेत्री को अपनी रानी बनाना चाहते हैं , वह भी इसी वर्ग में आने वाली वेश्या है । आजकल कई होटलों के मालिक इस व्यवसाय में लगे हुए हैं । इनमें वे वेश्याएं आती हैं जो शिक्षित , फैशनेबुल व आरामदायक होती हैं । इनमें कालेज की लड़कियां ,स्टेनों ,टेलिफोन-ओपरेटर , रिसेप्शनीस्ट , सोसायटी-गर्ल्स आदि आती हैं । इसमें एक-दो हजार से लेकर लाखों रूपये की लागत वाली पामेला जैसी रूपसियां भी आती हैं ।

/5/ रखैल-वेश्याएं : ${}$ कनक्युबाइन्स ${}$: कई विवाहित पुरुष पत्नी के अतिरिक्त भी किसी स्त्री से अपने अवैध यौन-संबंध रखते हैं । उस स्त्री के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसीकी होती है । जब तक वह त्याग न दे वह स्त्री किसी अन्य पुरुष से संबंध नहीं रख सकती । बड़े-बड़े सेठ , राजा-महाराजा , जमींदार , उच्च अधिकारी , स्मगलर्स , डकैत आदि अपनी "रखैल" रखते हैं । एक विशेष तबके में इसे "स्टेटस-सिम्बोल" भी माना जाता है । आज की व्यंग्य भाषा में इसे "स्पेर-व्हील" कहा जाता है । इन्हें हम व्यक्तिगत वेश्याएं भी कह सकते हैं । शैलेश मटियानी के उपन्यास "रामकली" की रामकली इसी प्रकार की स्त्री है । "हिज हाईनेस" तथा "हर हाईनेस" में ऐसी कई रक्षिताओं की बात आती हैं है ।

/6/ वंशानुगत वेश्याएं : कई वेश्याएं वंशानुगत होती हैं । वंशानुगत वेश्यावृत्ति मुगलकाल की देन है ।[73] इस प्रकार की वेश्यावृत्ति में मां पुत्री को अपना धन्धा हस्तांतरित करती है । जब वह पहली बार अपनी लड़की को इस व्यवसाय में प्रवेश कराती है , तो एक समारोह का आयोजन होता है जिसे "नथ उतारना" कहते हैं । जो भी शख्स उसकी ज्यादा से ज्यादा कीमत देने को तैयार होता है , वही उसकी "नथ" उतारता है । "हिज हाईनेस" के महाराजा ऐसी कई वेश्या-पुत्रियों की नथ उतार चुके हैं ।

/7/ परिस्थितिजन्य वेश्याएं : इस श्रेणी में वे वेश्याएं आती हैं जो किसी परिस्थिति या कुसंगति में पड़ने के कारण वेश्यावृत्ति अपना लेती हैं । कई बार कुछ लड़कियां अभिनेत्री बनने के चक्कर में किसीके षडयन्त्र का शिकार होकर , अन्ततः इस व्यवसाय को अपनाने के लिए विवश हो जाती हैं । गरीबी , वैधव्य , बेकारी , बेमेल-विवाह , बाल-विवाह , फुसलाकर भगा ले जाना , बलात्कार जैसी परिस्थितियों में पड़कर बहुत-सी स्त्रियां वेश्यावृत्ति को अपना लेती हैं । "आगामी अतीत" (कमलेश्वर) की चांदनी बलात्कार का शिकार होती है । इस बात का मानसिक आघात उसे वेश्यावृत्ति की ओर प्रेरित करता है । "सब में नाच्यौ बहुत गोपाल" की निर्गुनिया (अमृतलाल नागर) बेमेल विवाह के कारण

वेश्यावृत्ति की ओर आकृष्ट होती है । "मुरदाघर" (जगदम्बाप्रसाद दीक्षित) की मैना को पोपट फुसलाकर शहर भगा ले आता है और उसे बलात वेश्यावृत्ति के लिए विवश करता है । आलोच्य लेखक के उपन्यास "जनानी सवारियां " में लेखक ने इस व्यवसाय के पूरे तन्त्र को खोलकर रख दिया है । रामजीलाल प्रकटतया तो स्टेशनरी की दूकान चलाता है परन्तु उसका मूल व्यवसाय ही लड़कियों को "सप्लाय" करने का है । उसे इस व्यवसाय में सहायता करने वालों में कोई आश्रम का संचालक होता है, कोई मंदिर का पुजारी , कोई साधु-बाबा तो कोई जमाना खाई हुई तजुर्बेकार बुढ़िया ।[74] इसी उपन्यास में एक आश्रम का संचालक रामजीलाल से कहता है -- " अनार उसका नाम है और यहां से पांच सौ कोस दूर एक कसबे की वह बेटी है । शादी उसकी आठ वर्ष की उम्र में हुई थी ; लेकिन पति-देवता बचपन में ही चल दिये । पांच-छः बरस छाती पर पत्थर रखकर उसने रण्डापा काटा , लेकिन एक दिन एक दूत की नजर पड़ गई और उसे पुनर्विवाह करवाने की लालच से उभार लिया गया ।"[75] "मौसी" कहानी में एक ऐसी बुढ़िया का चरित्र आता है जो परिस्थिति की मारी लड़कियों को इस राह पर डाल देती हैं ।

/8/ अपराधी एवं पिछड़ी जातियों व जन-जातियों की वेश्याएं :- कई जातियां एवं जन-जातियां ऐसी हैं जिनमें स्त्रियों और लड़कियों को वेश्यावृत्ति करनी ही पड़ती है । कई घुमक्कड़ जन-जातियों की स्त्रियां यह कार्य करती हैं । इनमें नट , बेरिया , बसावी , कंजर , सांसी आदि प्रमुख जन-जातियां हैं ।[76] रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं" उपन्यास में करनटों की स्त्रियों को भी आजीविका के लिए वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है । "धरती धन न अपना " तथा "नाच्यौ बहुत गोपाल" में क्रमशः चमार , हरिजन तथा मेहतरों के जीवन को लिया गया है । उनकी स्त्रियों को भी परिस्थितिगत विवशता में पड़कर अनेक बार वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है । "मयखाना" , "हिज हाईनेस" तथा "जनानी ~~सवारियांxसवारियांxमें~~ सवारियां " में है इसके कई उदाहरण मिल जाते हैं ।

/9/ ~~x/8/x~~ वासनसपीड़ित वेश्याएं : कुछ स्त्रियों में अन्य स्त्रियों की अपेक्षा यौन इच्छाएं अधिक होती हैं, अतः वे अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए कई पुरुषों से सम्पर्क करती हैं । अधिक यौन इच्छा होने का एक कारण ~~xxxx~~ यह भी है कि इनकी यौन-ग्रंथियों से रसों का स्राव अधिक होता है जो उन्हें यौन-उत्तेजना प्रदान करता रहता है । ऐसी स्त्रियां पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करके भी अपनी वासना-पूर्ति करती रहती हैं । यौन-इच्छा की इस अधिकता को अंग्रेजी में "निम्फोमेनिया" कहते हैं और ~~और~~ ऐसी स्त्री को "निम्फो" कहा जाता है ।[77] कृष्णा सोबती के उपन्यास "मित्रो मरजानी" में मित्रो की मां, "नाच्यौबहुत गोपाल" की निर्गुनिया, "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" (शैलेश मटियानी) की नर्मदाबेन सेठानी ऐसी विपुल वासनावती स्त्रियां हैं, जिनको "निम्फो" कहा जा सकता है । डा. रामदरश मिश्र कृत "जल टूटता हुआ " की इलवा भी इस कोटि में आती है । नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" की गौरी सधुआइन कपड़ों की तरह मर्द बदलती है । एक स्थान पर वह कहती है कि उसमें गरमाये घोड़े को भी शांत करने की कूव्वत है ।[78] आलोच्य लेखक की कहानी ~~ब~~ "मठ" में मस्तानी नामक सधुआइन आती है, उसे भी इसी कोटि में रखा जा सकता है ।

/10/ धार्मिक वेश्याएं : प्राचीन काल से ही भारत में देवदासी प्रथा प्रचलित रही है जिसमें युवा लड़कियों को "येलम्मा" देवी को सौंप दिया जाता है । ये लड़कियां प्रकट रूप से मंदिर में गायन तथा नृत्य का कार्य करती हैं, परन्तु अप्रकट रूप से उनके शारीरिक संबंध संस्था से जुड़े सभी व्यक्तियों से होते हैं । इन्हें "भगतनियां" भी कहा जाता है । कुछ संप्रदायों के मठों एवं आश्रमों में सधुआइनों को रखा जाता है । उनका कार्य उस संप्रदाय या मठ के सर्वेसर्वाओं की यौन-तुष्टि करना होता है । उनके द्वारा राजनीतिज्ञों तथा सरकार के उच्च अधिकारियों को वशीभूत किया जाता है । नागार्जुन कृत "इमरतिया" की माई इमरतीदास तथा गौरी इस प्रकार की सधुआइनें हैं । मठ में लक्ष्मी के बच्चे की बलिवाले प्रसंग को लेकर कोई पुलिस में रिपोर्ट कर

देता है । तब गौरी को भरतपुरा के थानेदार के पास भेज दिया जाता है । वह चार दिन थाने में रहकर मामला "सेटल्ड" कर देती है -- "भरतपुरा की पुलिस के रिकोर्ड में दर्ज हुआ होगा -- पूजा की आठवीं रात में जाने किधर से एक पगली आई । उसकी गोद में छः महीने का बच्चा था । पुजारी की नजर बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में डाल दिया... सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के संत शिरोमणि बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें । " [79] अभी हाल ही में पवित्र धाम द्वारिका के "सनातन सेवा मंडल" के विख्यात अब कुख्यात, स्वामी केशवानंद का सेक्स-स्कैण्डल" पकड़ा गया है, उसमें भी हेमा शर्मा और रेखा वायडा नामक दो युवतियों को पकड़ा गया है जो स्वामी की इस कामलीला में सहकार्यकर थीं । आश्चर्य और विडम्बना की बात यह है कि इनमें से एक ~~स्कूल की अध्यक्ष हैं और दूसरी~~ बालिकाश्रम की गृहमाता हैं और दूसरी आचार्या । शैलेश मटियानी कृत "एक मूठ सरसों" में भी ऐसी भगतिनों का जिक्र आता है ।

संक्षेप में यह रेखांकित किया जा सकता है कि हमारे नगरों तथा गांवों में प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न रूप से स्त्रियों का नैतिक-दैहिक शोषण किसी-न-किसी प्रकार होता रहता है । ऋषभचरण जैन के "मयखाना" "हिज हाईनेस", "हर हाईनेस", "जनानी सवारियां", "चम्पाकली" "तीन इक्के", "दिल्ली का व्यभिचार ", "दिल्ली का कलंक", "दुराचार के अड्डे " जैसे उपन्यासों तथा अनेक कहानियों में इस दैहिक-लीला का चित्रण हुआ है ।

अन्ततः प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित ~~अर्थों~~ तथ्यों वा निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं :-

§1§ औद्योगिक क्रांति तथा तज्जन्य पूंजीवाद से निर्मित जटिल सामाजिक व्यवस्था के समीचीन आकलन के लिए एक नवीन विधा के रूप में उपन्यास का आविर्भाव हुआ ।

§2§ यथार्थधर्मिता ही उपन्यास का एक व्यावर्तक लक्षण है ।

§3§ हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी,

लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , मन्नन द्विवेदी , किशोरीलाल गोस्वामी , मेहता लज्जाराम शर्मा , बाबे गोपालराम गहमरी तथा बाबू देवकीनंदन खत्री प्रभृति लेखकों द्वारा हुआ ।

§4§ उस समय के लेखक दो कोटियों में विभाजित थे -- नवसुधारवादी लेखक और पुरातनवादी लेखक ।

§5§ बाबू गोपालराम गहमरी तथा बाबू देवकीनंदन खत्री से हिन्दी उपन्यास को लाभ भी हुआ है और हानि भी पहुँची है ।

§6§ हिन्दी उपन्यास को उसकी वास्तविक गरिमा प्रेमचन्द से प्राप्त हुई है । उनके उपन्यासों में मानव-चरित्र की पहचान मिलती है ।

§7§ ऋषभचरण जैन का स्थान प्रेमचन्द के समकालीनों में है । विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" , पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" , राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह , प्रतापनारायण श्रीवास्तव , आचार्य चतुरसेन शास्त्री , वृन्दावन लाल वर्मा , सियारामशरण गुप्त , भगवतीप्रसाद वाजपेयी , जयशंकर प्रसाद , सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रभृति आलोच्य लेखक के समकालीन हैं ।

§8§ इस काल-खण्ड का उपन्यास कुछेक अपवादों को छोड़कर सामाजिक-समस्यामूलक प्रकार का रहा है ।

§9§ इस काल-खण्ड में कुछेक लेखिकाएं भी मिलती हैं -- उषादेवी मित्रा , तेजोरानी दीक्षित तथा शिवरानीदेवी आदि इनमें मुख्य हैं ।

§10§ दहेजप्रथा , अनमेल ब्याह , वृद्ध-विवाह , बाल-विवाह, नारी-शिक्षा , अस्पृश्यता-निवारण , सत्याग्रह , हिन्दू-मुस्लिम एकता , भारत का स्वाधीनता संग्राम , वेश्या-समस्या , पूंजीपति-वर्ग की विलासिता एवं ऐयाशी जैसे विषयों को लेकर इस समय का उपन्यास चला ।

§11§ प्रेमचन्द निम्न-मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष लेकर चले तो आलोच्य लेखक में हमें उच्चवर्गीय जीवन की गंदगी और खोखलापन के दर्शन होते हैं । शराबनोशी , वेश्यागमन जैसी वृत्तियों का इनमें विशेष चित्रण हुआ है ।

==== XXXXX =====

:: सन्दर्भानुक्रम::

§1§ द नोवेल एण्ड ए मोडर्न गाईड टु फिफ्टीन इंग्लिश मास्टर पीसिस : पृ. 13 ।

§2§ द्रष्टव्य : पाश्चात्य काव्यशास्त्र -- मार्क्सवादी परंपरा : सं. डा. मक्खनलाल शर्मा : लेख - उपन्यास और यथार्थ : मू.ले. राल्फ फाक्स : अनु. गार्गी गुप्ता : पृ. 188-197 ।

§3§ वही : पृ. 193 ।

§4§ द्रष्टव्य : चिंतामणि भा.1 : निबंध : लोभ और प्रीति । पृष्ठ —

§5§ "3" के अनुसार : पृ. 193 ।

§6§ [illegible] समीक्षायण : डा. चारुकांत देसाई : पृ. 130 ।

§6-ए§ द्रष्टव्य : "हिन्दी उपन्यास " : सं. भीष्म साहनी : पृ. 530 ।

§7§ द्रष्टव्य : दीक्षा : नरेन्द्र कोहली : पृ. 137 ।

§8§ साहित्यालोचन : डा. श्यामसुंदरदास : पृ. 135 ।

§9§ कुछ विचार : प्रेमचन्द : पृ. 46 ।

§10§ काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृ. 155 ।

§11§ हिन्दी साहित्यकोश : भा.1 : पृ. 153 ।

§12§ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : लेख : साहित्य-संदेश : मार्च -1940 ।

§13§ [illegible] "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. गणेशन : पृ. 29 ।

§14§ द्रष्टव्य : "विवेक के रंग" : सं. देवीशंकर अवस्थी । पृष्ठ —

§15§ द्रष्टव्य : "हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख " : डा. मदान । पृष्ठ —

§16§ "प्रेमचन्द और उनका युग " : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 31 ।

§17§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 58 ।

§18§ हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ. 434 ।

§19§ द्रष्टव्य : भूमिका : परीक्षागुरु । — पृष्ठ —

§20§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 96 ।

(21) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 97 ।

(22) राईटर्स एट वर्क : फर्स्ट सीरिज़ : पृ. 60 ।

(23) द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास का विकास" : डा. सुरेश सिंहा । पृ.8 —

(24) लेख : साहित्य -संदेश : मार्च-1940 ।

(25) मेमोरिज़ एण्ड पोर्टरेट्स : स्टीवन्सन्स : पृ. 284 ।

(26) ~~[illegible]~~ प्रेमचन्द और
(26) उनका युग : पृ. 31 ।

(27) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 58 ।

(28) द्रष्टव्य :"आधुनिक साहित्य :एक परिदृश्य " : अज्ञेय : पृ. 96 ।

(29) "हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " : पृ. 44 ।

(30) द्रष्टव्य : युग निर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 12 ।

(31) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 68 ।

(32) "हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " : पृ. 42 ।

(33) द्रष्टव्य : युग निर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 77 ।

(34) द्रष्टव्य : लेख : वासुदेव मेहता : गुजराती दैनिक : संदेश : 26-4-94 ।

(35) प्रेमचन्द और उनका युग : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 84 ।

(36) रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 558 ।

(37) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 68 ।

(38) वही : पृ. 67 ।

(39) "लाईफ एण्ड वर्क ओफ प्रेमचन्द " : डा. मनोहर बंदोपाध्याय :पृ. 121 ।

(40) वही : पृ. 82 ।

(41) आज का हिन्दी उपन्यास : डा. इन्द्रनाथ मदान : पृ. 9-10 ।

(42) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 69-70 ।

(43) काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृ. 182-183 ।

(44) डा. भारतभूषण अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 94 ।

(45) द्रष्टव्य : युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 30 ।

(46) हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 69 ।

§47§ "वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा " : डा. सियाराम शरण प्रसाद : पृ. 224 ।

§48§ द्रष्टव्य : शिरीष पंचाल : एतद : पत्रिका : जन-मार्च : 1994 : पृ. 51 ।

§49§ द्रष्टव्य : युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 30 ।

§50§ लेख : संसारशास्त्री : संदेश §गुज§ अर्ध-साप्ताहिक पूर्ति : 22-6-94 : पृ. 18 ।

§51§ हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 105 ।

§52§ युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 2-3 ।

§53§ सिक्स डिकेड्स आफ अर्बनाईजेशन इन इण्डिया : अर्बन सोसियोलाजी इन इण्डिया : आशिष बोज : पृ. 173 ।

§54§ भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा. एम.एल. गुप्ता : पृ. 113 ।

§55§ द्रष्टव्य : दिनांक 15-6-94 से 22-6-94 तक के सभी गुजराती अखबार तथा नवभारत टाईम्स दिनांक 21-6-94 तथा 27-6-94 ।

§56§ द्रष्टव्य : कहानी : "उस की विरासत" : बिखरे मोती " ऋषभचरण जैन : 58 ।

§57§ सोसियल डिस आर्गेनाइजेशन : इलियट एण्ड मैरिल : पृ. 542-543 ।

§58§ क्रिमिनोलोजी : कोर्डवेल : पृ. 4 ।

§59§ राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल : पृ. 364 ।

§60§ द्रष्टव्य : "दान" कहानी : "दान तथा अन्य कहानियां " : पृ. ___

§61§ सी : "सोसियल डिसआर्गेनाईजेशन " : इलियट एण्ड मैरिल : पृ. 184 ।

§62§ भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 237 ।

§63§ रिपोर्ट आफ द टेकचन्द स्टडी टीम आफ प्रोहिबिशन : वोल्युम-1 : पृ. 68 ।

§64§ भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 239 ।

§65§ वही : पृ. 240 ।

§66§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 241 ।

§67§ एनसायक्लोपीडिआ आफ सोशल साइन्सिस : 1935 : प्रोस्टिट्युशन ।

§68§ सोसियल डिसआर्गेनाईजेशन : इलियट एण्ड मैरिल : पृ. 155 ।

HANSA MEHTA LIBRARY
M. S. University of Baroda

(69) सेक्स इन रीलेशन टू सोसायटी : पृ. 155 ।

(70) क्रिमिनालिटी एण्ड इकोनोमिक कंडीशन्स : पृ. 152 ।

(71) रिपोर्ट आफ द एडवाइजरी कमिटि ओन सोसियल एण्ड मोरल हाईजिन (1954) : पृ. 30 ।

(72) चम्पाकली : ऋषभचरण जैन : पृ. 77 ।

(73) द्रष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 261 ।

(74) द्रष्टव्य : जनानी सवारियां : पृ. 73 ।

(75) वही : पृ. 89 ।

(76) भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 261 ।

(77) सी . "एन ए.बी. डेड आफ लव " पृ. 258 ।

(78) द्रष्टव्य : इमरतिया : नागार्जुन : पृ. 27 ।

(79) वही : पृ. 22 ।

===== xxxxx =====